लगभग बीस वर्ष पूर्व ही समस्त व्यापार का कार्यभार अपने मान सुयोग्य सुपुत्रों पर छोड़कर अपना समय धर्म ध्यान, पूजा-पाठ, पर्यटन, तीर्थस्थलों की यात्रा, पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाओं के पठन पाठन एवं पारिवारिक लोगों के साथ वातचीत, हँसी मजाक, टी० वी० एवं धार्मिक कैसेटों के माध्यम से व्यतीत करते हैं। श्री सेठजी हमेशा से धुन के पक्के, दूरदर्शी, आशावादी, शांतिप्रिय एवं दृढ़ इच्छाशक्ति वाले रहे हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे जीवन में किसी भी व्यसन के शिकार नहीं हुए।

युवावस्था में वहुत ज्यादा पान खाने का शौक हो गया था तथा यह क्रम ३० वर्ष तक चलता रहा। आखिर इसे एक मिथ्या एवं स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद समझकर एक दिन मुनिमहाराज से पान न खाने की प्रतिज्ञा ले ली एवं जीवन भर के लिए इस व्यसन से छुटकारा पा लिया।

व्यवसायिक जीवन के ५० वर्ष वम्बई में विताये किन्तु उक्त महानगरी में चाय जैसे वहु प्रचलित पेय के व्यसन से भी अपने आपको अलिप्त रखा।

समन्वयवादी

निजी जीवन में हमेशा समन्वयवादी रहे हैं। कभी अपने विचार दूसरों पर लादने की कोशिश नहीं की। स्वयं वहुत ज्यादा व्रत उपवास में विश्वास नहीं करते किन्तु इनकी पत्नी प्रारम्भ से ही वहुत ज्यादा व्रत, उपवास रखती हैं। हर अष्टमी, चौदस तथा धार्मिक पर्वो पर निर्जल उपवास रखती हैं तथा कई वार अष्टान्हिका एवं पर्यूषण पर्व पर आठ-आठ दिन के निर्जल उपवास किए। अपनी शक्ति से अधिक व्रत उपवास करनें के विरोधी होते हुए भी अपनी पत्नी के विचारों का विरोध नहीं किया तथा उनके हर धार्मिक अनुष्ठान में सहर्ष सहयोग दिया। आज भी दिन में नित्य तीन वार सामायिक, धार्मिक पाठ एवं स्वाध्याय करती हैं और उसके कारण सायंकाल पार्क में घूमने जाने में सेठ जी का साथ नहीं दे पातीं लेकिन इस वात का सेठजी के मन में तनिक भी मलाल नहीं है। विवाह के पूर्व से ही अजैनपानी के त्याग, कन्दमूल का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, नित्य जिन मन्दिर के दर्शन किये विना भोजन ग्रहण न करना आदि के नियम होने से यात्रा आदि में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है किन्तु इस वात को लेकर सेठ जी ने कभी क्रोध नहीं किया। परिवार में सेठजी सभी की वात ध्यान से सुनते हैं व

वही करने का आदेश देते हैं जो परिवार के अधिकांश सदस्यों को रुचि-कर होता है। यही गुण इनके लड़कों में भी आया है। नये उद्योग लगाने के लिये छहों भाई आपस में बैठकर विचार विमर्श करते है तथा सर्व सम्मति से नीति निर्धारित करते हैं, सामयिक समस्याओं के निराकरण हेतु उपाय सोचते हैं और उस पर चलते हैं। सव भाइयों ने अलग-अलग विभागों की जिम्मेदारियां सम्हाल रक्खी हैं और पूर्ण लगन एवं परिश्रम से अपने-अपने कार्य को पूरा करते हैं। प्रतिभा उद्योग समूह के निरन्तर उत्कर्ष का कारण है उसका मजवूत व्यापारिक संगठन।

सेठजी ने अपनी दूरदर्शिता से परिवार का गठन इतने सुन्दर ढंग से कर रक्खा है कि सातों बेटों के परिवार अलग अलग रहते हुए भी एक हैं। सव बेटों, वहुओं और पोते पोतियों में अगाढ़ स्नेह है। छोटों में वड़ों के प्रति असीम श्रद्धा और विनय भाव है। कहीं कोई मनमुटाव अथवा कटुता नहीं। परिवार में कहीं कोई रंचमात्र भी क्लेश की भावना उत्पन्न न हो इसके लिये वे वहुत सतर्क रहते हैं और कभी-कभी सव वहुओं और बेटों को सामने विठाकर पारिवारिक समस्याओं का हल निकालते हैं। शादी विवाह तथा अन्य मंगल कार्यो पर निर्णय लेने के पूर्व सवकी राय लेते हैं तथा वहुमत का जिस ओर झुकाव देखते हैं, अपने विवेक से वैसा निर्णय लेते हैं, पश्चात् परिवार के सव सदस्यों को अलग अलग काम सौंप देते हैं जिससे वह कार्य सोची हुई रूप रेखा के अनुसार सफलता पूर्वक, निर्विघ्न, समय पर विना परेशानी के सम्पन्न हो जावे।

अलग अलग रहने से परिवार के स्नेह की कड़ी टूट न जावे, कोई अपने आपको इस वड़े परिवार से दूर न समझ बैठे वल्कि हर तरह से पूरे परिवार को समान रूप से अपने सुख दुःख का भागीदार समझे इस दृष्टि से ये होली, दीवाली, रक्षा वंधन, मकर संक्रान्ती, तीजें आदि वड़े खास खास त्योहार एक जगह और एक साथ वारी वारी से प्रत्येक वेटे के निवास स्थान पर मनाने का आयोजन करते हैं। इसी प्रयोजन से रविवार या अन्य छुट्टी के दिन महीने में एक वार कहीं वाहर पिकनिक पर भी सपरिवार जाते रहते हैं।

परिपाटी के अनुसार प्रारम्भ से ही पूरा परिवार होली का उत्सव एक जगह मिलकर खूव जोर शोर से मनाता रहा है लेकिन इधर कुछ वर्षों

से होली के हुड़दंग से वचने के लिये और छुट्टियों का पूरा फायदा उठाने के लिये एवं कुछ दिन पूरी मस्ती और हँसी खुशी के वातावरण में विताने के लिये किसी पहाड़ी स्थान नैनीताल, मसूरी आदि या किसी मित्र के नज़दीक के गाँव के कृषि फार्म पर तीन चार दिन के लिए चले जाते हैं और वहीं होली का त्योहार पूरे राग रंग, साज सामान सहित हँसी खुशी के साथ गाने वजाने, घूमने फिरने में विता देते हैं और फिर तरोताजा होकर काम का समय आते ही सव एक जुट होकर अपने अपने काम में लग जाते हैं। व्यापार करने वाले अपने व्यापार में, गृहणियाँ अपने गृह कार्य में और वच्चे अपनी पढ़ाई में। सेठजी का नारा है, मौज के समय मौज, काम के समय काम।

पुराने व नये रीति रिवाजों, धार्मिक क्रिया काण्डों और नये तथा पुराने विचारों का समाज व परिवार के हित में समन्वय करने की इनमें अद्भुत क्षमता है। स्वस्थ परम्पराओं का वे स्वागत करते हैं और उनमें भी निरन्तर सुधार लाने की प्रेरणा देते रहते हैं। इस अवस्था में भी वे सामाजिक, शिक्षात्मक, प्रथम व द्वितीय महायुद्ध के समय हवाई जहाजों से महानगरों पर हुई वमवर्षा और उसके कारण जान माल की हुई भीषण तवाही पर खींची गई फिल्में, आजादी के जंग को उजागर करने वाली राष्ट्रीय धाराओं से ओत-प्रोत तथा देश-विदेश की वेष-भूषाओं, वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य, रहन-सहन, रीतिरिवाजों पर प्रकाश डालने वाली फिल्में देखने के वहुत शौकीन हैं तथा परिवार के लोगों को भी ऐसी फिल्में देखकर अपना ज्ञान वढ़ाने और मनोरंजन प्राप्त करने के लिये कहते रहते हैं। परिवार के साथ आस-पास की दर्शनीय जगहों पर पिकनिक पर जाना उन्हें वहुत रुचिकर है तथा जव तव इसका आयोजन करने की प्रेरणा देते रहते हैं।

व्यापार में प्रवेश

सेठजी की माताजी का वहुत वचपन में ही देहान्त हो गया था। पुरानी विचारधारा के वड़े परिवार में रहने के कारण इनकी उचित शिक्षा पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, फलतः स्कूल की शिक्षा तो इन्हें मामूली ही मिल पाई। मातृत्व प्यार से रहित, परिवार के अन्य सदस्यों के रूखे व्यवहार से असन्तुष्ट हो, १२ वर्ष की अल्पायु में ही ये विना किसी को सूचित किये, अपने कपड़े और जेव खर्च से वचाये रुपये लेकर अकेले वम्वई एक सम्वन्धी के पास चले गये और उनसे व्यापार सीखने की इच्छा प्रकट की। उत्कृष्ट लगन, तीव्र इच्छा शक्ति

तथा कड़ी मेहनत के वलपर ये शीघ्र व्यापार कार्य और हिसाव किताव के रखरखाव में प्रवीण हो गये। इनकी तेजस्विता, ईमानदारी, मृदुभाषिता और सद्‌व्यवहार से निकट सम्पर्क में आने वाले सभी व्यापारी और ग्राहक प्रभावित हो चुके थे, अतः स्वतन्त्र व्यापार प्रारम्भ करते ही इनका व्यापार चमक उठा और ये सफलता की नई मंजिलें पार करने लगे।

हिसाव किताव का सही ज्ञान, व्यापार में सफलता की कुँजी है। जो व्यापारी अपने हानि लाभ का सही आंकलन नहीं कर पाते वे व्यापार में सफल नहीं हो सकते। केवल कल्पना के सहारे अपने आपको भारी लाभ में समझ कर जो शोहरत वटोरने में सुख का अनुभव करने लगते हैं, राग रंग और ऐश्वर्य की जिन्दगी विताने की ओर प्रवृत होकर आमदनी से अधिक खर्च करने लगते हैं वे व्यापार में असफल हो जाते हैं और परिणामतः उनका आगे का जीवन घोर निराशा और व्याकुलता में वीतता है। व्यापार के उतार चढ़ाव को हमेंशा सतर्कता पूर्वक देखते रहने से सेठजी हमेंशा विपदा से वचे रहे और आर्थिक तथा मानसिक तनाव का इन्हें कभी सामना नहीं करना पड़ा।

अपनी प्रतिभा के वलपर इन्होंने व्यापार के कई क्षेत्रों में प्रवेश किया। जवाहरात, सोने-चांदी, चाय का थोक व्यापार और प्रतापगढ़ (राजस्थान) में कुछ वर्ष तक कपड़े की दूकान भी चलाई। परिस्थितियों के अनुसार व्यापार वदले। इसी सिलसिले में काफी भारत भ्रमण किया और उससे उनके अनुभव में वृद्धि होती रही।

उन दिनों वम्वई में व्यापारिक क्षेत्र में गुजरातियों और पारसियों का वाहुल्य था। ये लोग वहुत शांतिप्रिय और गुणग्रही होते हैं अतः इनकी उनके साथ वहुत पटती थी। प्रारम्भ से इनको नाटक, नृत्य, गरवा, संगीत आदि का शौक होने से ये ऐसे आयोजनों में उत्साह पूर्वक भाग लेते थे और उसके कारण नाटक कम्पनियों एवं मूक चलचित्रों (विना आवाज की फिल्में) जो उस समय वनना ही शुरू हुई थीं, उन उद्योगों में लगे पारसी परिवारों से इनका काफी घनिष्ठ सम्वन्ध हो गया था। परिणामतः रणजीत मुवीटोन के मालिक जो सेठजी के अच्छे दोस्त थे, उन्होंने इनको अपनी फिल्म कम्पनी में पार्टनर की हैसियत से शामिल होने का आमन्त्रण दिया किन्तु स्वयं अकेले होने से व अंग्रेजी का कोई ज्ञान नहीं होने से इन्होंने उनके साथ काम करने में कठिनाई अनुभव की और फलतः उस अवसर का लाभ नहीं उठा पाये।

स्वतन्त्रता सेनानी

परिस्थितिवश स्कूल की शिक्षा तो इन्हें मामूली ही मिल पाई किन्तु वचपन से ही दैनिक समाचार पत्र व पुस्तकें पढ़ने का इन्हें वहुत शौक रहा। फलतः घर पर तथा समय मिलने पर लायब्रेरी में पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते रहने से इनके साधारण ज्ञान की वृद्धि होती रही। राष्ट्रीय आन्दोलनों में इनकी वहुत रुचि रही और उसके कारण इस विषय की पुस्तकें तथा राष्ट्रीय नेताओं के जीवन चरित्र वहुत पढ़ते रहे। फलतः इनकी विचार-धारा उग्र राष्ट्रवाद और समाज सुधार की ओर झुकती चली गई। अपने विचारों को मूर्तरूप देने के लिये तथा सक्रिय कार्य करने की दृष्टि से इन्होंने राष्ट्रीय काँग्रेस की पूर्ववर्ती संस्था "होमरूल लीग" की सदस्यता ग्रहण कर ली तथा एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में संस्था का प्रचार कार्य करते रहे एवं उसकी नीतियों को कार्यान्वित करने के लिये हर तरह का सहयोग देते रहे।

पश्चात लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, महात्मागांधी के कार्य क्षेत्र में आनेपर भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में सम्मिलित हो गये। काँग्रेस का कार्यक्रम आगे वढ़ाने के लिए गठित सेवा दल के लिये स्वयं सेवकों की वहुत आवश्यकता थी। गाँधी जी की अपील पर इन्होंने अपने आप को देशसेवा के लिये अर्पित कर दिया और नित्य सुवह शाम परेड में भाग लेने लगे। प्रत्येक स्वयं सेवक को आदेश था कि निजी कार्य के पश्चात जितना भी समय मिले, जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरें, देश से निरक्षरता दूर करें, लोगों को अंग्रेजों की चालों से सावधान करें, उनकी ज्यादतियाँ सवको वताएं, हिन्दू मुसलमानों के मन से साम्प्रदायिकता के भाव दूर करके उनमें प्रेम और विश्वास के भाव जगाएँ, देश से छुआछूत मिटाएं तथा सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में पिरोने की चेष्टा करें।

काँग्रेस कार्यकर्ताओं और देशभक्तों पर ब्रिटिश शासकों की उस समय कड़ी नजर थी तथा सत्याग्रह, पिकेटिंग, प्रदर्शन और जुलूसों पर जगह-जगह पुलिस द्वारा लाठीचार्ज और गोली वर्षा होती रहती थी। ऐसे समय में भी वे निडर होकर इन आयोजनों में भाग लेते रहते थे और कई वार पुलिस की लाठियाँ और वेतें खाईं। ऐसे आतंक के वातावरण में जवकि आम जनता पकड़े जाने या लाठियाँ खाने के भय से वन्दे मातरम् का नारा लगाने से भी घवराती थी और वहुत कम लोग आजादी के दिवाने वनकर वाहर आने की हिम्मत करते थे, एक मारवाड़ी युवक को अपने वीच पाकर अन्य सव साथी फक्र करते थे और उन्हें आशा वँधती

थी कि अब आम जनता में जागृति फैलती जा रही है और इस कारण आजादी के दिन दूर नहीं हैं।

कांग्रेस सेवादल में रहते हुए इन्होंने बम्बई, कलकत्ता, नागपुर, मद्रास, त्रिपुरा, आदि में हुए राष्ट्रीय कांग्रेस के कई अखिल भारतीय अधिवेशनों में स्वयंसेवक के रूप में कार्य करके देश की सेवा की।

एक बार ये किसी कार्य से सलूम्बर (मेवाड़) पहुँचे। यह एक बहुत पिछड़ा हुआ इलाका था। छोटी रियासत थी। वहाँ इन्होंने देखा कि कुछ सिपाही कुछ भील और भिलनियों को पकड़ कर जबरदस्ती ले जा रहे हैं और उनमें से एक भिलनी बहुत विलाप करके रो रही है। उसकी बगल में एक दुधमुहाँ बच्चा है। वह रो रो कर कह रही थी कि उसे बेगार में न ले जाया जाय। घर में उसके छोटे-छोटे बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। यदि वह कुछ कमाकर शाम तक उनके लिए खाने को न ले गई तो बच्चे भूख से मर जायेंगे। किन्तु उन सिपाहियों का दिल नहीं पसीजा। वे उन लोगों को रस्सी से बाँधे हुए, मारते हुए लिये जा रहे थे।

श्री सेठजी से यह दृश्य देखा न गया। वे क्रोध से तिलमिला उठे और फटकार कर उन सिपाहियों से तुरन्त उन सब लोगों को बन्धन से मुक्त करने को कहा। पिछड़ी हुई उस छोटी सी रियासत के अनपढ़ सिपाही उनके रोब में आ गये। कांग्रेस स्वयं सेवकों की उस समय की मिलिटरी जैसी इस्त्री की हुई और क्रीज बनी हुई तथा बैजों से युक्त शानदार खाकी पोशाक, साफा, रोबिला गौरवर्णीय चेहरा, गठीला शरीर और ऊँचे घुटनों तक के जूते देखकर वे हतप्रभ हो गये तथा इन्हें कोई बड़ा मिलिटरी ऑफीसर समझकर तुरन्त सबको छोड़कर अलग खिसक गये और सूचना देने थाना पहुंचे। इधर ये जोश में तो थे ही। देश की परिस्थिति पर, देश के रजवाड़ों के जुल्म पर जोर-जोर से भाषण देना शुरू कर दिया। आम बाजार था। चारों ओर से काफी लोग इकट्ठा हो गये और इनका भाषण ध्यान से सुनने लगे। भीड़ में से कुछ उत्साही लोगों ने अपने यहाँ गरीबों पर होने वाले जुल्म की शिकायतें करना शुरू कर दी। कुछ लोगों ने बेगार से भीलों, आदिवासियों और हरिजनों पर राज्य की ओर से तथा सामन्तों और बड़े-बड़े राज्य के अधिकारियों द्वारा बेगार (बिना श्रम का पैसा दिये मुफ्त

काम लेना) जैसे जुल्मों की वारदातें वतानी शुरू कर दीं। सारा माहौल अपने पक्ष में देखकर इनकी हिम्मत और वढ़ी तथा इन्होंने शहर के कुछ वुजुर्ग लोगों से वात की और उन्हें इस वात पर राजी किया कि वे सव लोग मिलकर उनके साथ राजा जी से मिलने दूसरे दिन दरवार में चलें और सिपाहियों द्वारा गरीवों पर होने वाले अत्याचारों से उन्हें अवगत कराएं तथा प्रार्थना करें कि रियासत में वेगार लेना वन्द कर दी जाय।

सेठजी रोज सुवह शाम दूर-दूर तक पैदल घूमने फिरने के शौकीन तो थे ही। शांम को घूमते हुए राणाजी के नीजी मन्दिर में पहुँच गये। वहाँ उनका मिलन मन्दिर के महन्तजी से हुआ। आपस में एक दूसरे का परिचय हुआ। सेठजी ने दिन में होने वाली घटना की वात सुनाई तथा आग्रह किया कि वे एकान्त में राणाजी को गरीवों पर होने वाले अत्याचारों सें अवगत कराएँ। राणाजी के वंश में कई पीढ़ी से पुत्र नहीं हो रहे हैं, यह गरीवों के इसी श्राप का कारण है, अतः वे उन्हें समझाकर राज्य से वेगार प्रथा हमेशा के लिये वन्द करवा दें। महन्तजी वड़े सुलझे हुए, राष्ट्रीय विचारके, मानवतावादी व्यक्ति थे। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे राणाजी को समझाने का पूरा प्रयत्न करेंगे। अन्ततः चारों ओर की कोशिश होने से उक्त रियासत में वेगार प्रथा हमेशा के लिये वन्द हो गई तथा इस आशय की मुनादी राज्य भर में पिटवादी गई। राजकीय घोषणा कर दी गई।

कट्टर समाज सुधारक

श्री सेठजी प्रारम्भ से ही समाज में अधिक से अधिक सुधार लाने के पक्षपाती रहे हैं। पुराने, रूढ़िग्रस्त, वेकारके व खर्चीले रीति रिवाज उन्हें पसन्द नहीं। इनसे ग्रस्त होकर वेकार के खर्चों के कारण समाज के आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की तो रीढ़ ही टूट जाती है। जो पैसा वे वच्चों की पढ़ाई, अपने खान-पान, मनोरंजन और स्वास्थ्य पर खर्च कर सकते थे, वह रुपया व्यर्थ के आडम्वर में फूंक जाता है, जिसका लाभ किसी को नहीं मिलता।

सेठजी अन्तरजातीय विवाह के पक्षपाती रहे हैं और अपने सव पुत्रों के विवाह इन्होंने समाज के कड़े वन्धनों को तोड़कर जैन समाज में ही अग्रवाल और खण्डेलवाल दोनों समाजों में किये हैं। ये दहेज प्रथा के घोर विरोधी रहे हैं।

"ज्ञानकीर्ति प्रकाशन" के वरिष्ठ संरक्षक

५८ वर्षीय, सरल एवं उदार हृदय श्री महावीर प्रसाद जी (प्रो० अग्रवाल मोटर्स, लालबाग, लखनऊ) धार्मिक कार्यों में उत्साह से सहयोग देते हैं। परिवार में ध० प० श्रीमती इन्द्रा देवी जैन, एक अविवाहित पुत्र सहित ३ पुत्र, तथा ३ पुत्रियां हैं।

आप प्रारम्भ से ही 'ज्ञानकीर्ति' के संरक्षक सदस्य थे। प्रकाशन की उपयोगिता को समझ, आवश्यक अवशेष सहयोग दे, आपने 'ज्ञानकीर्ति प्रकाशन' की वरिष्ठ संरक्षकता ग्रहण की तथा प्रकाशन को गौरवान्वित किया।

फोन : निवास ४२८७२ फोन : दु० ४५६३६

श्री महावीर प्रसाद जैन निवास : ३८, मेजर बैंक्स रोड, लखनऊ

"ज्ञानकीर्ति प्रकाशन" के संरक्षक सदस्य

श्री सलेक चन्द जैन

११४ बादशाह नगर, लखनऊ

दूरभाष : ४७६१८
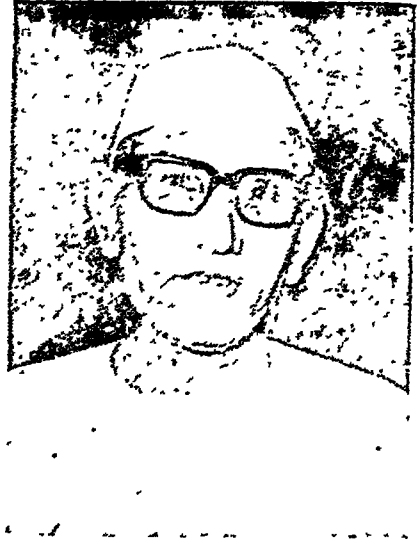
श्री सौभाग्य मल जैन

सहादतगंज, लखनऊ

दूरभाष : ८३२७७, ८३६१९, ८२८११

❀ "ज्ञानकीर्ति प्रकाशन" के संचालक ❀

श्री नन्द किशोर जैन एम० ए०, चौक, लखनऊ

जन्म 4 नवम्बर, 1924

अग्रवाल, गर्ग गोत्र। बाबा—स्व० श्री पन्ना लाल जी जैन, पिता—स्व० श्री लाभ चन्द जी जैन 'सत्यार्थ', माता—स्व० श्रीमती जियो बीबी। प्रारम्भ से ही पढ़ने-लिखने तथा संगीत में रुचि। परन्तु मनुष्य जो चाहता है सो अक्सर कर नहीं पाता और जो कभी सोचा भी नहीं वह उसके द्वारा हो जाता है। हाई स्कूल करने बाद अर्थोपार्जन के संघर्ष में जुटना पड़ा।

'भावना से कर्तव्य ऊँचा है' तथा 'जीवन में शांति पाने के लिए संघर्ष, संघर्ष नहीं साधना है।'

भातखंडे संगीत महाविद्यालय में ४ वर्ष तक संगीत सीखा। १९५४ में कविवर स्व० श्री 'पुष्पेन्दु' जी के साथ ही इंटर की परीक्षा प्राइवेट दी। लखनऊ विश्व विद्यालय में प्रवेश। १९५८ में एम० ए० किया। स्व० श्री गुलाब चन्द जी जैन से जीवन में बहुत प्रोत्साहन तथा प्रेरणा मिली।

कृतियाँ: फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त "तत्वार्थ-सूत्र" तथा "समयसार कलश" का सरल भाषा में पद्यरूपान्तरण।
"प्रज्ज्वलित प्रश्न" सामाजिक एवं धार्मिक नाटक
"महावीर स्वामी" छोटा सा खंड काव्य।

जीवन दर्शन : पाप—किसी को पीड़ा देना, पुण्य—सभी का सुख है।
आत्म-दमन यदि होए निरर्थक, पाप रूप वह दुख है।

❀ अहिंसा परमो धर्मः ❀

समयसार अमृत कलशावलि

श्री कुन्द कुन्द आचार्य देव प्रणीत समयसार की श्री अमृत चन्द्र आचार्य विरचित आत्म ख्याति - टीका - अन्तर्गत कलश-श्लोक-समयसार कलश का सरल भाषा के दोहों में भावानुवाद

—: अनुवादक एवं प्रकाशक :—

नन्द किशोर जैन एम० ए०

चौक, लखनऊ

☎ ८२८६३, ८२४२०

प्रथम संस्करण १९८४

मुद्रक
जैन प्रिन्टर्स
१२६, न्यू मार्केट नखास
लखनऊ

मूल्य
श्रुतदान हेतु
'ज्ञानकीर्ति प्रकाशन'
के सदस्य बनिए एवं सदुपयोग

समयसार अमृत कलशावलि

की

विषय सूची (क्या, कहाँ)

कृपया पढ़ने से पूर्व अशुद्धियों को शुद्ध कर लें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	सवँ	सर्वं	५३	२५	बताय	बताया
१०	२८	दव	तन	५२	२५	४	३
१४	११	पुदकल	पुद्गल	५४	२२	बँध	बंध
१८	१२	७	८	५६	१५	द्वेँप	द्वेष
१९	२०	निश्चल	निश्चल	५६	२३	अनादहि	अनादि
२१	२३	दिखती	दीखती	५९	१०	कर्ता	कर्ता
२७	२	व्रत	व्रत	६७	२७	आवश्यक्त	आवश्यक
३१	१९	१२	१३	६९	१८	द्वव्य	द्रव्य
३१	१८	(छूट गया है)	यद्यपि दोनो ही त्याज्य हैं,	७०	२	स्वाद्वाद	स्याद्वाद
				७१	८	मतिज्ञाना	मतिज्ञा
३३	१४	शंक	शंका	७१	२३	ज्ञानहि	ज्ञानहि
४०	२३	समर्थ	समर्थ	७३	८	मृत्य	मृत्यु
४०	२५	ज्ञान	ज्ञन	७४	२५	स्वाद्वाद	स्याद्वा
४३	८	अपने	अपने	७६	२३	द्रव्यदिक	द्रव्यादि
४६	४	जैसा	जैसा	७९	४	अमृतचंद	अमृतचं
५१	२४	संयोगा	संयोग	७९	१२	श्रावक एवं	श्रावक एवं सा
५१	२४	वास्ताविक	वास्तविक	७९	२७	द्वादग	द्वादश

❀ अपनी बात ❀

संसार में सभी प्राणी सुख पाना चाहते हैं, इस हेतु वे विभिन्न ग्रंथों का अनुशीलन करते हैं। समयसार भी ऐसे ही ग्रंथों में एक है जिसके सम्यक मनन से व्यक्ति सुख प्राप्त कर सकता है। कुछ मुनि–आर्यिकाओं तथा विद्वानों का मत है कि केवल साधु वर्ग ही समयसार के पढ़ने का अधिकारी है। मेरा विनम्र निवेदन है कि समयसार के कथ्य—अकर्ता भाव, पर पदार्थों से मोह त्याग तथा आत्मानुभव में रमण के अभ्यास से एक श्रावक भी सुख प्राप्त कर सकता है। निश्चय और व्यवहार नय को लेकर जो विरोध दिखाई देता है उसका निराकरण भी ४ थे काव्य में है।

मेरा संस्कृत-ज्ञान अत्यन्त न्यून है परन्तु टीकाओं की सहायता से निमित्त मिलने पर १९७३ के लगभग 'तत्वार्थ सूत्र' का सरल भाषा में पद्यानुवाद मेरे द्वारा हो गया। मुझे विद्वानों से कह-सुनकर कृति पर सम्मतियां लिखवाने में विश्वास नहीं है। पाठकों के सरल उद्‌गारों से ही किसी कृति का वास्तविक मूल्यांकन होता है। कुछ उदाहरणः— स्व० पं० परमेष्ठी दास जी—"गहन सूत्रों का सरल भाषा में अनुवाद करने के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं.......।"

श्री जिनेन्द्र कुमार जी जैन, मेरठ—"बड़ा सुन्दर है। और सरल तो इतना कि अनपढ़ तक समझ लें।"

१९८१ में 'जैन गजट' का पुनः प्रकाशन मेरे सह सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक अंक में समयसार कलश के ५–६ छंदो का दोहों में अनुवाद कर के मैं प्रकाशित करवाने लगा। १ वर्ष में लगभग आधा छप चुका था कि उस पद से मुझे कतिपय कारणों से मुक्ति मिल गई, साथ ही 'जैन गजट' में उसका छपना भी बंद हो गया ! उपरांत अनेक व्यक्तियों ने उसके न छपने पर खेद प्रकाश किया तथा कई पत्र भी आए :— श्री कल्याण कुमार जैन 'शशि'—"कई अंकों से जैन गजट में आपकी कोई रचना नहीं आ रही, ऐसा क्यों हो रहा है ? आपकी रचनाओं से मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है, मार्ग दर्शन मिलता है।" श्री अर्जुन लाल जैन गोधा, उदयपुर— "समयसार कलश का पद्यानुवाद 'जैन गजट' में छपना क्यों बंद हो गया है ? आपकी यह कृति बहुत ही Short and Sweet है।"

अब यह कृति जैसी भी है आपके हाथ में है। इसे पढ़ कर इसके विषय में अपनी सम्मति मुझे अवश्य लिखें। इस तरह के सभी अनुवादों का तुलनात्मक मूल्यांकन होना चाहिए। समालोचना तथा सुझावों का सदैव सहर्ष स्वागत है जिससे आगामी संस्करणों को अधिक उपयोगी बनाया जा सके। जैन प्रिन्टर्स सुन्दर छपाई के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। यदि स्वाध्याय प्रेमी पाठकों को इस पुस्तक के द्वारा 'समयसार कलश' को समझने तथा पाठ में कुछ भी आनन्द प्राप्त हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

—नन्द किशोर जैन

चौक, लखनऊ

कल्याणमयी जिनवाणी की स्तुति

"ओंकारं बिन्दु संयुक्तं......" का भावानुवाद —नन्द किशोर जैन

बिन्दु युक्त ओंकार जिसे, योगी जन नित प्रति ध्याते हैं।
जिसकी भक्ति प्रसाद भव्यजन, काम मोक्ष सुख पाते हैं॥

जिसकी गुरु, गंभीर, निरंतर, ध्वनि सुन पाप नशाते हैं।
जग के अघ-प्रक्षालक को हम, सविनय शीश नवाते हैं॥

जिसकी महिमा सुर, नर माते, तीर्थ समान बखानी है।
मुनीश्वरों से पूजित ऐसी, सरस्वती जिन बानी है॥

दूर करें अज्ञान अँधेरी, आँजें ज्ञान सलाई जो।
मोहित, बंद नयन जो खोलें, वंदन ऐसे गुरुवर को॥

सकल कलुष विध्वंस करे जो, पथ कल्याण दिखाता है।
धर्म समन्वित शास्त्र वही, मन भव्य जनों के भाता है॥

वक्ता, श्रोता उभय पक्ष को, अरु जो शास्त्र प्रदाता है।
पुण्य प्रकाशक, पाप प्रणाशक, जिन वाणी सुखदाता है॥

गिरि सम श्री सर्वज्ञ देव मुख, मूल रूप से आई है।
गणधर पुनि प्रतिगणधरादि, ग्रंथों की धार बहाई है॥

ऐसी पतित पावनी माता, सबको गले लगाती है।
सावधान हो सुनिए प्रियवर, शांति हृदय सरसाती है॥

मंगल कारक महावीर प्रभु गौतम गणधर मंगल रूप।
करें कुन्दकुन्दादिक मंगल, मंगल दा जिन धर्म अनूप॥

यह मंगल चित लाते सत्वर, पाप सभी गल जाते हैं।
करते हैं कल्याण जीव का संकट सभी नशाते हैं॥

इसीलिए तो सब धर्मों में, सर्व प्रधान बखाना है।
जयतु-जयतु जय जय जिन शासन, सुख अरु शांति खजाना है॥

[ॐ]

समयसार अमृत कलशावलि

नमः समय साराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ।।

मंगलाचरण स्वरूप शुद्धात्मा को नमन :—

तीनकाल पर्याय युत जेते जीव अजीव।
जाने दर्पणवत तदपि भिन्न समझता जीव ।।
स्वानुभूति रस मग्न सो आतम शुद्ध अनूप।
समयसार परमात्मा प्रणमूँ ज्ञान स्वरूप ।।१।।

अनेकान्तमयी जिनवाणी की स्तुति :—

गुण–अनंत–सागर, अमल, वीतराग भगवान।
अनेकान्तमय दिव्य ध्वनि उनकी विमल महान ।।
आत्मज्ञान की ज्योति जो झलकावे अविकार।
करे प्रकाशित जगत को नमहुँ सो बारम्बार ।।२।।

अपने चित्त की निर्मलता हेतु प्रार्थना :—

पर परणति से है मलिन पाकर मोह निमित्त।
सो अशुद्धता सब मिटे निर्मल होवे चित्त ।।
शुद्ध जीव का अनुभवन समयसार उपदेश।
परम–अमलता–ज्ञान–सुख मिले न संशय लेश ।।३।।

जिनवाणी निश्चय और व्यवहार का द्वन्द्व मिटाती है :—

निश्चय नय से जानिए है पदार्थ इक रूप।
ताही के व्यवहार नय भिन्न-भिन्न हैं रूप॥
निश्चय अरु व्यवहार का द्वन्द्व मिटावनहार।
स्याद्वाद शुभ चिन्ह युत जैनागम चितधार॥
जिनवाणी की प्रीति से सहज हृदय में आए।
नित्य, अनादि, अनन्त पद मोक्ष तुरत पहुँचाए॥४॥

व्यवहार तथा निश्चय नय की वास्तविक भूमिका :—

अवलम्बन पर बाहु ले चढ़ते उच्चस्थान।
वैसे ही व्यवहार नय है प्रारम्भिक ज्ञान॥
ऊँचे चढ़ छूटे सहज अवलम्बन जग-रीति।
त्यों विकल्प मिटते सभी होते आत्म-प्रतीति॥
द्रव्य-भाव-नो कर्म बिन, शुद्ध जीव का ज्ञान।
निश्चय सो अनुभूति ही है अनन्त सुख-खान॥५॥

षड् द्रव्यों, नव तत्वों से विलग शुद्ध आत्म स्वरूप :—

षड् द्रव्यों, नव तत्व में लगता एकाकार।
निश्चय इनसे भिन्न है शुद्ध जीव चितधार॥
सो आतम अनुभूति ही सम्यग्दर्शन मान।
ज्ञान चेतना मात्र ही वस्तु स्वरूपहि जान॥६॥

आत्मा ज्ञान-चेतना मात्र है :—

उसी पदार्थ अनूप का अलख, अरूपी जोय।
शब्दों द्वारा युक्ति से वर्णन आगे होय॥
घास, काठ की अग्नि सम नव तत्वों से युक्त।
लगता है व्यवहार में उनसे ही संयुक्त॥
जैसे अग्नि स्वरूप बस-दाह, उष्णता जान।
निश्चय से यह जीव है मात्र चेतना-ज्ञान॥७॥

स्वर्ण की उपमा द्वारा आत्मा का कथन :–

ज्यों धरिया में मेल से स्वर्ण धरे वहु रूप।
निश्चय से यदि देखिए सोना शुद्ध स्वरूप ॥
त्यों अनादि नव-तत्व वश होकर एकाकार।
कहलाता उस रूप भी कहिए सो व्यवहार ॥
उनसे भिन्न स्वरूप ही शुद्ध जीव का जान।
सो अनुभव सम्यक्त्व है, मिले ध्यान, अनुमान ॥८॥

स्वानुभूति होने पर नय-निक्षेपादि व्यर्थ :–

अनुभव साधन प्रथम ही नय, निक्षेप प्रमान।
साध्य सधे, साधन हटें, जाने रीति सुजान ॥
अनुभव में जब जीव का मिलता है आस्वाद।
छुटते सभी विकल्प तब, मिटता वाद–विवाद ॥
ज्यों दिनकर के उदय से अंधकार बिनसाए।
रागादिक की बात क्या, सकल द्वंद्व मिट जाए ॥६॥

स्वानुभव होने पर सब विकल्प मिट जाते हैं :–

होते राग नयादि के सभी विकल्प विलीन।
निजानुभव में आत्मा जब होती तल्लीन ॥
आदि–अन्त से रहित, नित शुद्ध जीव का भान।
स्वानुभूति में प्रगट हो सो सम्यक्त्व बखान ॥१०॥

आत्मानुभव की भावना भाते हैं :–

सब विभाव परिणाम हैं ऊपर–ऊपर जान।
शरीरादि के मोह वश सो संयुक्त बखान ॥
सदा प्रकाशित ज्ञान–गुण ही सम्यक्त्व स्वभाव।
सब जीवों को अनुभवे, छूटें सभी विभाव ॥११॥

स्वानुभव होने पर मोह विकार नष्ट हो जाता है :-

निश्चय से जब जीव को लखता शुद्ध स्वरूप।
कीचड़ कर्म कलंक की हटे होय तद्रूप ।।
शुद्ध जीव त्रय काल के मेटे मोह विकार।
नित्य, अबाध, अनन्त सुख से हो एकाकार ।।१२।।

आत्मा और ज्ञान में मात्र गुण-गुणी का भेद है :—

अनुभव दोनों एक हैं, आत्म कहो या ज्ञान।
नाम भेद गुण-गुणी का, यद्यपि एक समान ।।
अपने में जब आपको, ध्याता आतम राम।
मिट अशुद्धता प्रगटता ज्ञान-पुंज अभिराम ।।१३।।

आत्मा के ज्ञान-पुंज होने में नमक डली की उपमा :-

जीव पदार्थ सदा रहे अपने ही आधार।
भीतर-बाहर चेतना भरी हुई अविकार ।।
स्वयं सिद्ध, उत्कृष्ट निज रहता गुण-पर्याय।
सदा प्रकाशित द्रव्य सो अनुभव मेरे आए ।।
नमक-डली सर्वांग में क्षार युक्त ज्यों होय।
ज्ञानपुंज अरु निराकुल आत्म अनुभवे मोय ।।१४।।

साध्य और साधक की एकता :-

जो साधक सो साध्य है ऐसा द्रव्य अनूप।
यों प्रत्यक्ष-परोक्ष में लगते हैं दो रूप ।।
मोक्ष हेतु यों है नहीं अन्य सहारा कोय।
ज्ञानपुंज शुद्धात्मा अनुभव करिए सोय ।।१५।।

आत्मा में अभेद और भेद दृष्टि :-

दर्शन-ज्ञान-चरित्र त्रय भेद मलिन व्यवहार।
निश्चय से चैतन्य को नित्य, अभेद विचार ।।
मलिन, अमल इक ही समय, उभय नयों वश जान।
जीव-द्रव्य दो रूप युत लगता दृष्टि-प्रमाण ।।१६।।

आत्म-द्रव्य की शुद्धता—अशुद्धता :—

द्रव्य दृष्टि से पूर्णतः जीव द्रव्य है शुद्ध।
भेद दृष्टि गुण—गुणी से सो ही लगे अशुद्ध॥
दर्शन—ज्ञान—चरित्र के तीन सहज गुण जान।
सो भी सब व्यवहार है, निर्विकल्प इक मान॥१७॥

शुद्धात्मा द्रव्य—भाव—नो कर्म रहित है :—

ज्ञान मात्र ही जीव है परम प्रकाश स्वरूप।
द्रव्य—भाव—नो कर्म बिन शाश्वत द्रव्य अनूप॥
सब विकल्प व्यवहार हैं, सब परिणमन विभाव।
सब का मेटनहार है निर्विकल्प निज भाव॥१८॥

स्वानुभूति ही वास्तविक मोक्ष मार्ग है :—

निर्मल और मलीन द्वय पक्षपात हैं रूप।
सो विचार सधता नहीं चेतन शुद्ध स्वरूप॥
दर्शन—ज्ञान—चरित्र इक शुद्ध रूप का होय।
मोक्ष—मार्ग सो अनुभवन अन्य नहीं है कोय॥१९॥

व्यवहार से त्रिविध, निश्चय से स्वानुभव ही मोक्ष मार्ग है :—

ज्योति रूप, निर्मल, लहे लक्षण—ज्ञान—अनन्त।
त्रिविध रूप व्यवहार, इक शुद्ध अनुभवें संत॥
स्वानुभूति बिन है नहीं निश्चय आत्म प्रतीति।
अन्य नहीं है मोक्ष पथ, अन्य नहीं है रीति॥२०॥

दर्पण का दृष्टान्त :—

मूल स्व—पर विज्ञान अरु है स्थिरता रूप।
काल—लब्धि से अनुभवें चेतन शुद्ध स्वरूप॥
आप स्वयं उपदेश—गुरु, जीव भव्य संसार।
दर्पणवत प्रतिबिम्ब से भिन्न रहे अविकार॥२१॥

मोह त्याग का उपदेश :—

शुद्ध जीव का अनुभवन और मोह का त्याग।
बार–बार सो चिंतवन मन में जगे विराग॥
तब अनादि मिथ्यात्वजा—मोह नष्ट हो जाए।
ज्यों पावक संयोग से स्वर्ण—कलंक विलाए॥
द्रव्य—भाव—नो कर्म युत कटे कर्म का जाल।
सुखद, प्रकाशित चार गुण प्रगट होय तत्काल॥२२॥

आत्मा देह से भिन्न है :—

भव्य जीव ! तू देह से भिन्न स्वयं को जान।
निज स्वरूप का अनुभवन है अनन्त सुख—खान॥
किसी तरह से चाहिए लखना स्वयं स्वरूप।
छुटे मोह पर्याय, हो अनुभव आत्म अनूप॥
परिणमता चिरकाल से चेतन बिना विवाद।
शुद्ध स्वयं चैतन्य का प्रगट लीजिए स्वाद॥२३॥

तीर्थंकर के सहज गुणों की स्तुति आत्मा से भिन्न है :—

प्रक्षालित कर दश–दिशा जिनकी दीप्ति अपार।
कोटि सूर्य के तेज को सहज घटावनहार॥
शोभा—सुन्दरता परम हरती जन–मन सोय।
दिव्य–ध्वनि से कान में अमृत वर्षा होय॥
है शुभ लक्षण युत वदन आठ सु एक हजार।
तीर्थंकर सो गुण सहज चेतन है अविकार॥२४॥

उपर्युक्त कथन में उदाहरण स्वरूप निम्न २ पद :—

गहरी खाई से घिरा, पीता मनु पाताल।
बाग–बगीचों का सघन फैल रहा है जाल॥
कंगूरे परकोट के मनु पहुंचे आकाश।
देख दूर से ही जिसे मन में होय हुलास॥
नगर बड़ाई सो सभी, राजा की नहिं सोय।
तीर्थंकर—तन—द्युति जुदा त्यों चेतन–गुण होय॥२५॥

बाल, युवा अरु वृद्धपन से रहते अविकार।
बिन प्रयत्न सर्वांग है सुन्दर सभी प्रकार॥
तीर्थंकर जयवंत हों निश्चल उदधि समान।
सो तन-स्तुति जानिए, आतम का गुण-ज्ञान॥२६॥

तन और चेतन की स्तुति की भिन्नता :-
तन, चेतन की एकता लगती है व्यवहार।
निश्चय दोनों भिन्न हैं, मन में लेहु विचार॥
तन की स्तुति अन्य है, अन्य चेतना होय।
मिट जाते संदेह सब यदि विचारिए सोय॥
ध्यान और अभ्यास जब—'चेतन का गुण ज्ञान'।
जीव—स्तुति सो जानिए निसंदेह श्रीमान॥२७॥

युक्ति पूर्वक समझाने पर आत्म स्वरूप का ज्ञान :—
युक्ति पूर्वक इस तरह समझाने पर जान।
किसको होवेगा नहीं निज स्वरूप का भान॥
ढँकी हुई ज्यों वस्तु को प्रगट करे जब कोय।
निसंदेह प्रत्यक्ष सो दृष्टिवान को होय॥
जीव—काय सम्बन्ध त्यों सर्वज्ञों ने जान।
हितकर आत्म—स्वरूप को दर्शाया गुण खान॥२८॥

स्वानुभूति में उदाहरण :—
ज्यों धोबी त्रुटि अन्य का वस्त्र पहिन ले कोय।
वस्त्र-धनी की माँग पर, त्यागे लज्जित होय॥
स्वानुभूति त्यों जिस समय निज अनुभव में आए।
द्रव्य-भाव-नो कर्म के सब विभाव बिनसाए॥२९॥

निजानंद में मग्नता :—
छुट विभाव परिणाम अब प्रगटा शुद्ध स्वरूप।
बिना अन्य उपदेश के आस्वादूं निज रूप॥

नहीं, नहीं मैं मोह से पंकिल किसी प्रकार।
हूँ समुद्र उद्योत का, चेतनता अविकार ॥३०॥

आत्म स्वरूप का प्रगटीकरण :—
द्रव्य-भाव-नो कर्म बिन, निर्विकल्प, अविकार।
शुद्ध जीव का अनुभवन कर पूर्वोक्त प्रकार॥
दर्शन-ज्ञान-चरित्र मय प्रगट हुआ निज रूप।
रमा आप में आप ही चेतन शुद्ध स्वरूप ॥३१॥

स्वानुभव ही उपादेय है :—
उठी यवनिका, भ्रम मिटा, नाटक-पात्र समान।
जो था सम्मुख आ गया शुद्ध चेतना-ज्ञान॥
तन्मय हो निज रूप में डूब लीजिए स्वाद।
उपादेय है शान्त रस जग में बिना विवाद ॥३२॥

सारांश :—इस प्रथम अधिकार में सर्व प्रथम "समयसार" स्वरूप शुद्धात्मा को नमन किया गया है। निश्चय और व्यवहार नयों को लेकर जो विरोध है उसका निराकरण ४ थे काव्य में कर दिया गया है—'उभयनय विरोध ध्वसनि' (निश्चय अरु व्यवहार का द्वन्द्व मिटावनहार) ही सही दृष्टि है।

तथापि आगे शुद्धनय को ही अधिक उपादेय मानते हुए आत्मानुभव में रमण करने का उपदेश है। पाँचवे काव्य में बताया है कि व्यवहार नय प्रारम्भिक अवस्था में सीढ़ी के समान साधन भर है, लक्ष्य तो आत्म-स्वरूप का दर्शन तथा निराकुलता की प्राप्ति ही है।

नवें काव्य से स्पष्ट है कि स्व-पर भेद विज्ञान के द्वारा जब जीव आत्मानुभव के रस में सराबोर हो जाता है तो सभी विकल्प मिट जाते हैं। यही अनुभवन मोक्ष स्वरूप है। २० वें काव्य में कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चरित्र त्रिविधि रूप साधन के द्वारा शुद्धात्मा का अनुभवन ही साध्य है। वास्तव में २३ वे काव्य का कथन—'किसी तरह से चाहिए लखना स्वय स्वरूप' ही इस अधिकार तथा समयसार का सार है।

प्रथम जीव अधिकार समाप्त

(२)

अजीव अधिकार

भेद विज्ञान की प्रशंसा :–

जीव द्रव्य क्या, युक्ति से समझाया श्रीमान।
अब चर्चा क्या नहीं है, सो अजीव लें जान॥
जीव–अजीव विवेक युत भेद–ज्ञान विस्तार।
कर्म—बंध, रागादि का सब बिनसे संसार॥
गणधरादि को भी हुई, यों ही जीव प्रतीति।
शुद्ध अनाकुल आत्म के मिलने की शुचि रीति॥
तेज पुंज, मन–मोद–दा, प्रकटे शुद्ध स्वरूप।
हो प्रत्यक्ष त्रिकाल–सत, चेतन तत्व अनूप॥१-३३॥

निजानुभूति का उपाय :–

तज विकल्प छह मास सब, अनुभव कर चिद्रूप।
हृदय सरोवर में खिला चेतन द्रव्य अनूप॥
वह पुद्गल से भिन्न है तेजपुंज अभिराम।
आकुल व्याकुल जीव को सो अनन्त विश्राम॥
ले सुवास निज भ्रमर बन तज के अन्य विचार।
होगा, होगा प्राप्त सो यह निश्चय चित धार॥२-३४॥

चेनन पुदगल में भिन्नता :–

दर्श–ज्ञान–सुख–वीर्य अरु चेतनता भंडार।
सो आतम से भिन्न गुण पुदगल के चित धार॥३-३५॥

आत्मोपलब्धि ही उपादेय है :–

अपने में ही आप का अनुभव सुख की खान।
उपादेय त्रैलोक्य में और नहीं कुछ जान॥
द्रव्य–भाव–नो कर्म सब चेतन के गुण नाय।
सो प्रतीति दृढ़ कीजिए आकुलता बिनसाय॥४-३६॥

आत्मा से वर्णादिक भिन्न हैं :—

वर्ण—रूप—रस—गंध अरु राग--द्वेष चित धार।
सब विभाव परिणाम हैं चेतन भिन्न विचारें॥
साधारण यों दीखते सबको जीव समान।
निज स्वरूप का अनुभवी सो नहिं देखे जान॥५-३७॥

संयोग से अन्य रूप कथन केवल व्यवहार है :—

मूल द्रव्य प्रतिभासती संयोगज पर्याय।
कभी--कभी उस रूप भी सो कहने में आए॥
ज्यों चाँदी की म्यान में लोहे की तलवार।
चाँदी की तलवार भी कहलाती व्यवहार॥६-३८॥

वर्णादिक पुदकल के गुण हैं :—

वर्ण--रसादि निमित्त से जीव धरे वहु रूप।
सो पुदगल--गुण, भिन्न है चेतन शुद्ध स्वरूप॥
द्रव्य--भाव-नो कर्म सब पुदगल ही के काम।
निश्चय इन से भिन्न है अपना आतम राम॥७-३९॥

जीव के वर्णादि कहना मिथ्या है (घी के घड़े की उपमा) :—

मिट्टी से निर्मित घड़ा भरा हुआ घृत होय।
कहलाता व्यवहार में 'घी का घट' भी सोय॥
वर्णादिक संयोग से त्यों चेतन चित धार।
कहलाता उस रूप भी सो सब जग व्यवहार॥८-४०॥

जीव चेतना रूप मात्र है :—

द्रव्य स्वरूप विचार से आतम चेतन रूप।
अपनी ही सामर्थ्य से अमित प्रकाश स्वरूप॥
बाधाहीन, अनन्त गुणयुत, अरूप विन काय।
आदि-अंत विन, अचल नित निज अनुभव में आए॥९-४१॥

जीव द्रव्य की अन्य द्रव्यों से भिन्नता :—

'भेद ज्ञान से युक्त ज्यों चेतन करें बखान।
त्यों ही अनुभव जीव का आप करें सुख-खान॥

चेतन जीव अभिन्न है, भिन्न द्रव्य हैं पाँच।
पुदगल के वर्णादि हैं' चार अमूर्तिक साँच ॥
यद्यपि जीव अमूर्त पर, चेतन लक्षण सोय।
आप आपको अनुभवे आपहि को सुख होय ॥
स्वयं सिद्ध, चैतन्य—युत, थिर, ज्ञानामृत रूप।
सुखाभिलाषी के लिए अनुभव आत्म—स्वरूप ॥१०-४२॥

जीव, जड़ की भिन्नता :—
चेतन लक्षण जीव का, जड़ अजीव का होय।
सम्यग्दृष्टी विज्ञ को प्रगट दीखता सोय ॥
जो अनादि से मोह वश भ्रमित फिरें संसार।
कहें जीव—जड़ एक ही कैसे हों भव पार ॥११-४३॥

ससार पुदगल द्रव्य का नाटक है :—
जीव-अजीवहिं एकता सहज दृष्टि नहिं कोय।
सो अनादि संयोग से संस्कार—वश होय ॥
चेतन, पुदगल भिन्न हैं पृथ्वी—गगन समान।
वर्णादिक संयुक्त जड़, चेतन उन बिन जान ॥
नाटक पुदगल द्रव्य का विस्तृत है संसार।
सम्यग्दृष्टी देखता रह कर के अविकार ॥१२-४४॥

भेद ज्ञान से शुद्ध आत्म स्वरूप का प्रगटीकरण :—
जड़ चेतन की एकता स्वर्ण—कीट सम जान।
सो अनादि संयोग से लगते एक समान ॥
भेद—ज्ञान—अभ्यास का आरा चले अनूप।
जड़—चेतन दो भाग बन प्रगटे भिन्न स्वरूप ॥
सभी ज्ञेय प्रत्यक्षवत प्रतिबिंबित कर जान।
भेद ज्ञान विस्तार से विकसे केवल ज्ञान ॥१३-४५॥

सारांश :—जिस प्रकार सोने की पहिचान के लिए पीतल आदि अन्य धातुओं का ज्ञान आवश्यक है उसे प्रकार वर्णादि संयुक्त जड़ से चेतन स्वरूप जीव का भिन्नत्व दर्शाना ही इस अधिकार का कथ्य है।

द्वितीय अजीव अधिकार समाप्त
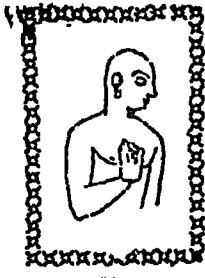
(३)
कर्ता—कर्म—अधिकार

पुदगल कर्म का तथा जीव अपने-अपने भावों का कर्ता हैं :—

ज्ञानावरणी आदि का निज को कर्ता मान।
मिथ्यादृष्टी जीव बहु पावे दुःख महान।।
भेद—ज्ञान जब प्रकट हो निज अनुभव में आए।
दिखें ज्ञेय प्रत्यक्ष वत द्रव्यहिं—गुण पर्याय।।
सर्वोत्कृष्ट, त्रिकाल सत प्रगटे सम्यग्ज्ञान।
'मैं हूँ कर्ता कर्म का'—दूर होय अज्ञान।।
मिटे भूल भारी सभी दुख का होए अभाव।
पुद्गल कर्ता कर्म का, मैं कर्ता निज भाव।।१-४६।।

ज्ञानोदय होने पर अहंबुद्धि मिट जाती है :—

अहंबुद्धि का जीव जब तज देता अविचार।
निज स्वरूप के स्वाद की पाता निधी अपार।।
ज्यों दिनकर के उदय से अंधकार विनसाए।
त्यों विवेक के जागते कर्मागम मिट जाए।।२-४७।।

कर्तापन की भावना ही दुख का कारण है :—

जो अनादि अज्ञान वश निज को कर्ता मान।
मिथ्यादृष्टी जीव बहु पाता दुःख महान।।
छुट त्रियोग, ममता हटी, निज अनुभव रस पाए।
तज आठों मद, सप्त भय जीव अभय हों जाए।।३-४८।।

आत्मा के कर्तापन नहीं है :—

मूल द्रव्य के मेल के होते गुण—पर्याय।
निश्चय ही वह गुण नहीं अन्य द्रव्य में आए।।

व्यापकता अरु व्याप्य भी एक द्रव्य में होए ।
भिन्न द्रव्य में है नहीं निश्चय जानों सोए ।।
पीला, भारी स्वर्ण है, ज्ञाता—दृष्टा जीव ।
जाति भेद जड़ कर्म से, कर्ता कर्म अजीव ।।
साधारण यों जीव ही कर्ता भासित होय ।
निश्चय कर्ता कर्म का शुद्ध जीव नहिं कोय ।।
भेद—ज्ञान—रवि प्रगटते मिट जाता अज्ञान ।
अन्धकार मिथ्यात्व मिट फैले सम्यग्ज्ञान ।।४-४६।।

भेद-ज्ञान के प्रगट होते ही जीव के कर्ता होने का भ्रम नष्ट हो जाता है :-

भेद—ज्ञान अनुभव नहीं जब तक प्रगटित होय ।
जीवहिं कर्ता कर्म का मिथ्या भासित होय ।।
चेतन और अरूप है—जीव द्रव्य पहिचान ।
रूपी चेतन हीन है—निश्चय पुद्गल जान ।।
जीव द्रव्य ज्ञाता स्व—पर, पुद्गल कर्महि ज्ञेय ।
अन्तर है भू—गगन का, यह ज्ञायक वह ज्ञेय ।।५-५०।।

कर्ता, कर्म, क्रिया की एकता—अनेकता में कुंभकार का दृष्टांत :—

कैसे कर्ता है नहीं जीव कहा समझाए ।
यद्यपि भासित हो रहा निश्चय से है नाय ।।
कुंभकार कर्ता कहें, कहें कर्म घट जान ।
कथन सोइ व्यवहार है, भेद—विविक्षा मान ।।
यदि अभेद से देखिए भेद नहीं है कोय ।
द्रव्य रूप में मृत्तिका घट की कर्ता होय ।।
कर्ता मिट्टी, कर्म घट, कैसे - क्रिया बताए ।
निश्चय तीनों एक हैं भेद कहाँ ठहराय ।।
कर्ता - कर्म - क्रिया सभी एक द्रव्य में मान ।
द्रव्य भेद स्पष्ट है पुद्गल जीवहिं जान ।।६-५१।।

कर्ता—कर्म—क्रिया में भेद होने पर भी एकपना है :—

सदा वस्तु का परिणमन अपने ही सम होय।
वस्तु परिणमित मूल से विलग नहीं है कोय॥
कर्ता – कर्म – क्रिया त्रिविध कहने को हैं भेद।
सो विकल्प मिथ्या लगें निश्चय दृष्टि अभेद॥
कर्ता – कर्म – क्रिया कहें इक सत्वहिं उपचार।
चेतन, पुद्गल कर्म में कैसे घटे विचार॥७-५२॥

चेतन, पुद्गल की सत्ता पृथक है :—

चेतन, पुद्गल द्रव्य मिल बनें न इक पर्याय।
दोनों की सत्ता पृथक कैसे एक बनाए॥
चेतन लक्षण जीव का, कहाँ अचेतन कर्म।
एक रूप किम परिणमें, बात यही है मर्म॥७-५३॥

चेतन, पुदगल दोनों ही अपना स्वभाव नहीं छोड़ते :—

दो कर्ता होते नहीं कभी एक परिणाम।
राग—द्वेष जीवहिं करे सो पुदगल नहिं काम॥
एक द्रव्य नहि परिणमे कबहूँ दोय प्रकार।
कर्ता निज परिणाम ही चेतन लेहु विचार॥
चेतन, पुदगल कोई भी तजते नहीं स्वभाव।
पुदगल कर्ता कर्म का, जीव करे निज भाव॥६-५४॥

अज्ञान के कारण ही अहंकार है :—

ढीठ, अहंकारी महा, संतति रूप, कठोर।
है अनादि मिथ्यात्व वश, जीवहिं मोह विभोर॥
देव, मनुज, तिर्यन्च अरु नारक "मैं" ही मान।
कर्मों की पर्याय में आत्म—बुद्धि ले ठान॥
शुद्ध जीव का अनुभवन तम मिथ्यात्व मिटाए।
मोह हटा पर द्रव्य से कारण बंध कटाए॥
ज्ञान सूर्य के प्रगटते, निज अनुभव निज सुप्त।
जागृत हो सो जीव भी क्रमशः होता मुक्त॥१०-५५॥

द्रव्य-कर्म का पुदगल तथा भाव-कर्म का कारण जीव है :—

केवल दर्शन—ज्ञान—सुख शुद्धहिं जीव स्वभाव।
राग—द्वेष—मोहादि भी कर्ता जीव विभाव॥
पर ज्ञानावरणादि हैं पुदगल की पर्याय।
द्रव्य—कर्म—कर्ता सदा पुदगल ही बतलाए॥
चेतन परिणामी सदा करे स्व—भाव, विभाव।
पुदगल, पुदगल ही करे सो निश्चय चित लाव॥११-५६॥

कर्ता भाव मिथ्यात्व है का उदाहरण :—

मिथ्यादृष्टी कर्म का निज को कर्ता मान।
खाद्य घास युत ज्ञान बिन खावे हस्ति समान॥
घास अन्न का हस्ति को ज्यो विवेक नहिं होय।
जीव, कर्म में भेद त्यों अज्ञानी नहिं कोय॥
खट्टे—मीठे स्वाद में हो आसक्त अपार।
दधि—मिश्री की शिखरणी कहे दुग्ध अविचार॥
उस लोलुप सम जीव यह करता नहीं विवेक।
माने फँस संसार में जीव कर्म को एक॥१२-५७॥

अज्ञान और भ्रम ही कर्तापने का कारण है इसका उदाहरण :—

यों संसारी जीव सब निश्चय शुद्ध स्वरूप।
पर रागादि विकल्प वश भूल गए निज रूप॥
वायु वेग से क्षुब्ध हो निश्चल उदधि समान।
जीव, कर्म संयोग, निज कर्ता करे बखान॥
मृग—मरीचिका को हरिण दौड़े पानी जान।
अन्धकार में रज्जु भी दीखे सर्प समान॥
त्यों पुद्गल से भिन्न है निश्चय जीव स्वभाव।
भ्रम वश कर्ता कर्म का मान रहा चित लाव॥१३-५८॥

ज्ञानी सदा अकर्ता है—इसका उदाहरण :—

यद्यपि ज्ञायक जीव है, किंचित कर्ता नाय।
निश्चल, चेतन—युत सदा, निज स्वरूप ठहराय ।।
नीर—क्षीर पहिचान ज्यों हंस स्वभावहिं होए।
जीव, कर्म त्यों भिन्नता सम्यग्दृष्टी होए ।।
जीव चेतना-युत निरा, कर्म अचेतन जान।
ज्ञानी कर्महि भोगता, निज को दृष्टा-मान ।।१४-५६।।

ज्ञानी के सहज ही भेद ज्ञान होता है :—

अग्नि स्वभावहिं उष्ण है, पानी शीतल होए।
गर्म अग्नि संयोग से हो जाता है सोए ।।
नमक मिले व्यंजन सभी लगते हैं नमकीन।
पर दोनों के भेद को जाने व्यक्ति प्रवीन ।।
त्यों शरीर—घट—पिंड में लगता एकमएक।
जीव—कर्म की एकता ज्ञानी को नहिं नेक ।।१५-६०।।

आत्मा स्वभाव का कर्ता है :—

जीव द्रव्य का परिणमन दो रूपों में होए।
शुद्ध चेतना मात्र जो सिद्ध अवस्था सोए ।।
यों विभाव परिणाम भी चेतन के हो जाएँ।
द्रव्य कर्म पुद्गल करे यह निश्चय चित लाएँ ।।१६-६१।।

चेतन को पुद्गल कर्मों का कर्ता कहना अज्ञान है :—

चेतन चेतनता करे और करे नहिं कर्म।
पुद्गल रूप न परिणमे बात यही है मर्म ।।
ज्ञान-आवरण आदि का कर्ता कहते जोए।
निश्चय सो अज्ञान वश मिथ्यादृष्टी होए ।।१७-६२।।

पुद्गल कर्म का कर्ता कौन है :—

अष्ट कर्म कर्ता सुनो भवि जन ध्यान लगाए।
तीव्र मोह के हरण हित गुरु कहते समझाए ।।

द्रव्यों का हो परिणमन निज स्वभाव अनुसार ।
कर्ता पुद्गल कर्म का आतम कौन प्रकार ।।
सब द्रव्यों का परिणमन होता निजहिं स्वभाव ।
पुद्गल कर्ता कर्म का, जीव करे निज भाव ।।१८-६३।।

पुद्गल सहज परिणमनशील होने से कर्मों का कर्ता है :—

मूर्त द्रव्य का परिणमन होता निजहिं प्रभाव ।
सो अनादि, बाधा रहित, निश्चय सहज स्वभाव ।।
शक्ति परिणमन सहज सो, पुद्गल की है जान ।
ताते पुद्गल कर्म का कर्ता पुद्गल मान ।।१९-६४।।
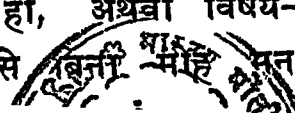
उसी प्रकार जीव भी अपने भावों का कर्ता है :—

चेतन की सामर्थ्य भी निश्चित इसी प्रकार ।
सदा अखंड प्रवाहमय चेतन रूप विचार ।।
शुद्ध चेतना रूप हों या अशुद्ध हों कोय ।
चित सम्बन्धी भाव का कर्ता चेतन होय ।।२०-६५।।

सम्यग्दृष्टी के कर्म बंध क्यों नहीं होता ? (प्रश्न) :—

सम्यग्दृष्टी जीव के सहज भेद विज्ञान ।
ज्ञान भाव कर्ता कहा किस कारण श्रीमान ।।
मिथ्यादृष्टी का कहा सब अशुद्ध परिणाम ।
कैसे होते ताहि के बंध हेतु सब काम ।।२१-६६।।

पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर :—

ज्ञानी के सब भाव हैं निश्चय ज्ञान-स्वरूप ।
अज्ञानी के भाव हैं सब अशुद्धता रूप ।।
दोनों की यों दिखती क्रिया एक सी जान ।
अन्तर है परिणाम का सो भू-गगन समान ।।
दान, दया, पूजादि हों, अथवा विषय-कषाय ।
ज्ञानी करे विवेक से बिनी माँहि मत लाय ।।

अज्ञानी सो ही करे महा–मोह चित धार।
मोह और अज्ञान ही कर्म–बंध का द्वार ॥२२-६७॥

ज्ञानी और अज्ञानी की क्रिया एक सी दिखती है :—

सम्यक–मिथ्या–दृष्टि की लगती क्रिया समान।
अन्तर अरु बहिरात्मा परिणामों से जान॥
मिथ्यादृष्टी जीव के बँधें निरन्तर कर्म।
ज्ञानी करता निर्जरा, क्रिया वही, यह मर्म॥
कुंभकार परिणाम ज्यों, घट निमित्त ही होय।
निश्चय सो परिणाम है उपादान नहिं कोय॥
त्यों ज्ञानावरणादि भी होते पुद्गल रूप।
कारण बाह्य निमित्त है जीव अशुद्ध विरूप॥
द्रव्य कर्म की वर्गणा होंय अनेक प्रकार।
आप रूप अनुभव करे उदय काल चित धार ॥२३-६८॥

सब विकल्प छोड़ कर स्वानुभूति ही उपादेय है :—

शुद्ध जीव का अनुभवन करें निरंतर जोय।
सदा अतीन्द्रिय मोद का अमृत पीवें सोय॥
नय–विकल्प की बुद्धि तज—द्रव्यहिं या पर्याय।
शुद्ध वस्तु अनुभव करे शांत चित्त हो जाए ॥२४-६९॥

दो पक्षों से जीव का वर्णन होता है :—

दो पक्षों से द्रव्य का कथन सदा से होय।
पर्यायार्थिक प्रथम है, द्रव्यार्थिक है दोय॥
पर्यायार्थिक—बद्ध जो जीव लगे व्यवहार।
निश्चय द्रव्यार्थिक वही सदा अबद्ध विचार॥
मोही, रागी, द्वेष युत, कर्ता भासे जोय।
मोह, राग अरु द्वेष से रहित अकर्ता सोय॥
भोक्ता, जीवहिं, सूक्ष्म अरु हेतु कहा व्यवहार।
वही अभोक्ता, जीव बिन आदिक अन्य प्रकार॥

कार्य, भाव, इक, सान्त अरु नित्य कहे इक जान।
दूजे नय से इन्हीं का कथन विलोमहि मान ।।
वाच्य व नाना रूप है एक पक्ष से जोय।
है अवाच्य, इक रूप ही अन्य पक्ष से सोय ।।
जानन, देखन योग्य है, वेद्य, प्रकाशित मान।
सो विलोम ही जानिए अन्य प्रकार बखान ।।
एक-एक पक्षहि लिए नय-विकल्प वश जान।
चित्स्वरूप अनुभव करे सो ही ज्ञानी मान ।।
उभय दृष्टि ज्ञाता, रहित पक्षपात से होय।
अमृत निजानुभूति का पिये निरंतर सोय ।।

।।२५ से ४४–७० से ८९ तक।।

नय विकल्प मिटने पर जीव अनुभव अमृत का पान करता है :—

उभय नयों के सहज ही बहु विकल्प चितधार।
विन उपजाए उपजते हैं पूर्वोक्त प्रकार ।।
सम्यग्दृष्टी तज उन्हें लखता शुद्ध स्वरूप।
रह कर सम रस, एक रस मग्न रहे चिद्रूप ।।
महा मोह को नष्ट कर निजानंद रस लीन।
अमृत निजानुभूति का पीते सदा प्रवीन ।।४५-९०।।

स्वानुभवन होते ही नय-विकल्प-भ्रम-जाल टूट जाता है :—

ज्ञान-पुंज हूँ मैं स्वयं जिसके मात्र प्रकाश।
नय-विकल्प-भ्रम-जाल का तत्क्षण होय विनाश ।।
लहरें भेद विकल्प की हैं आकुलता रूप।
उपादेय किंचित नहीं, रमिए स्वात्म अनूप ।।४६-९१।।

निश्चय से जीव के एकत्व का उदाहरण :—

शुद्ध आत्म का अनुभवन कार्य सिद्धि है सोय।
अर्थग्रहण सो ज्ञानगुण प्रगट उसी से होय ।।

युत उत्पत्ति—विनाश—ध्रुव, सधा हुआ त्रय भेद।
निश्चय जीवहिं एक है किंचित नहीं विभेद।।
रत्न—ज्योति, सागर—लहर रहें एक में लीन।
होते निजानुभूति त्यों, सभी विकल्प विलीन।।
कर्म—बंध—पद्धति सकल छुटे मोह तत्काल।
निजानंद रस में मगन रहिए सदा निहाल।।४७-६२।।

शुद्ध आत्मानुभव ही एक मात्र उपयोगी है :—
द्रव्य और पर्याय नय हैं परोक्ष श्रुतज्ञान।
शुद्ध आत्म का अनुभवन है प्रत्यक्ष प्रमान।।
नय—विकल्प तज परिणमे निज स्वरूप में जान।
निश्चय सो ही जीव है ज्ञानपुंज, भगवान।।
निधन-अनादि, पवित्र सो गुण अनन्त भंडार।
सम्यक—दर्शन—ज्ञान युत महिमा अगम अपार।।
निश्चल, ज्ञानी पुरुष ही करते सो रस पान।
स्वानुभूति ही मार्ग है अन्य न कोई जान।।४८-६३।।

संसारी आत्मा अनादि से कर्म—मल से मलिन है :—
यद्यपि यह जीवात्मा है अनन्त गुण खान।
कर्म—जनित—मल युक्त है सो अनादि से जान।।
अन्य द्रव्य संयोग से जल ज्यों होए विरूप।
यों स्वभाव से नीर का शीतल स्वच्छ स्वरूप।।
केवल दर्शन—ज्ञान युत जीवहिं सहज स्वभाव।
भ्रमित फिरे संसार में सो परिणाम विभाव।।
अवसर पा शुद्धात्मा कर्म बंध कर नाश।
निजानंद रस लीन हो पाता मुक्ति प्रकाश।।४९-६४।।

मिथ्यादृष्टि स्वयं को कर्ता मान कर दुख पाता है :—
कर्म जनित रागादि का निज को कर्ता मान।
मिथ्यादृष्टी जीव जग पावें दुःख महान।।

जिस विभाव परिणम रहा जब तक जीवहिं कोय।
तब तक तो उस भाव का कर्ता निश्चय होय॥
गुण सम्यक्त्व प्रगट हुए मिटता सभी विभाव।
निज स्वरूप में मग्न हो रमता निजहिं स्वभाव॥५०-६५॥

शुद्धात्मानुभवी केवल ज्ञाता है :—

मिथ्यादृष्टी जीव ही भावहिं कर्ता मान।
सम्यकदृष्टी जीव को सदा अकर्ता जान॥
रागादिक परिणम रहा भावहिं कर्ता सोय।
शुद्ध आत्म का अनुभवी केवल ज्ञाता होय॥५१-६६॥

ज्ञान और कर्म की भिन्नता :—

ज्ञानगुणहिं, मिथ्यात्व में है एकत्व न कोय।
अरु अशुद्ध रागादि से विलग ज्ञान गुण होय॥
ज्ञान, कर्म की भिन्नता यों होती साकार।
ताते कर्ता कर्म का जीव न किसी प्रकार॥५२-६७॥

जीव और पुद्गल का एक लगना आश्चर्य ही है :—

कर्म–पिंड रागादि भी मिल कर एक न होय।
अरु दोनों की एकता जीवहिं से नहिं कोय॥
द्रव्य–कर्म को जानिए निश्चय पुदगल रूप।
भाव–कर्म हैं जीव के सदा विभाव विरूप॥
भिन्न–द्रव्य द्रव्यत्व सो, भिन्न अन्य से जान।
एक जीव–पुदगल लगें तो आश्चर्य महान॥
निश्चय आतम एक है, पुदगल कर्म अनंत।
प्रकृति दोउ की भिन्न है निश्चय जानें संत॥५३-६८॥

ज्ञान सूर्य के प्रगट होते ही कर्तापने का भाव मिट जाता है :—

ज्ञानावरणी आदि जो, होते पुदगल जान।
वही कर्म पर्याय तज, पुनि पुदगल हों मान॥

त्यों विभाव रागादि भी कर्म रूप नहिं कोय।
शक्ति विभावहिं परिणमी, हुई स्वभावहिं सोय॥
कर्ता लगता जीव था जो मिथ्या परिणाम।
ज्ञान–सूर्य प्रगटे मिटा, कर्तापन का नाम॥
अचल, असंख्य प्रदेश युत, ज्ञान पुंज, गंभीर।
प्रगट हुआ चैतन्य यों, मिथ्या तम को चीर॥५४-६९॥

सारांश :—किसी कार्य को करने की विधि क्रिया, जो किया जाए वह कर्म तथा जो करे उसे कर्ता कहते हैं। जैसे कुम्हार कर्ता, घड़ा कर्म तथा चाक आदि चलाने को क्रिया कहा जाता है। परन्तु यह भेद–व्यवहार दृष्टि है जिसमें कुम्हार निमित्त मात्र है तथा कर्ता-कर्म क्रिया तीनों अलग-अलग प्रतीत होते हैं। वास्तव में अभेद दृष्टि से उपादान रूप में मिट्टी ही घड़े की कर्ता है। ५१ वें काव्य में यही बताया है।

इसी प्रकार अज्ञानी जीव क्रोधादि भावों का अपने को कर्ता मानता है परन्तु निश्चय नय से आत्मा अपने शुद्ध भावों का ही कर्ता है, अशुद्ध निश्चय नय से रागादि विभावों का कर्ता तथा व्यवहार नय से ही पुदगल कर्मों का कर्ता है। इस अधिकार में कर्ता-कर्म-क्रिया शब्द कहीं भेद-दृष्टि और कहीं अभेद-दृष्टि से आये हैं उन्हें बहुत विचार पूर्वक समझ लेना चाहिए। जैसे संतान को न तो अकेली माता से, न अकेले पिता से ही उत्पन्न कह सकते हैं, उसी प्रकार रागद्वेषादि जीव और पुदगल के संयोग से ही उत्पन्न होते हैं। निश्चय नय का ग्रंथ होने के कारण ही यहाँ राग-द्वेष-मोहादि को पुदगल जनित बतलाया है क्यों कि ये आत्मा के निज स्वरूप नहीं हैं। अज्ञान के कारण ही कर्तापन का अहंकार है, यह ५५ वें काव्य से स्पष्ट है। ७० से ८९ तक के कलश काव्यों में नय विकल्प से किस प्रकार जीव का वर्णन दो रूपों में हो सकता है इसका वर्णन था सो मैंने एक ही में सार रूप में दे दिया है। निश्चय नय से जीव के एकत्व का सुन्दर उदाहरण ९२ वें काव्य में है। वास्तव में अपने को कर्ता मानना सब दुखों का मूल तथा स्वयं को अकर्ता मानना ही सुखदाता तथा इस अधिकार का सार है।

तृतीय जीव अधिकार समाप्त
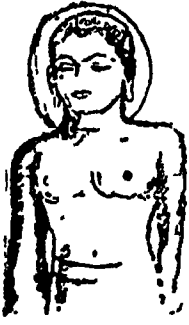
(४)
पुण्य-पाप अधिकार

पुण्य-पाप दोनों ही कर्म बंध के कारण हैं :—

दान, दया, तप, शील, व्रत, संयमादि शुभ कर्म।
शुभोपयोग परिणाम वश, वेदन-साता मर्म॥
हिंसा, विषय, कषाय युत, अशुभ सभी हैं काम।
होएँ असाता-वेद वश, संक्लेशित परिणाम॥
अशुभ कर्म से शुभ भला यद्यपि निश्चय होय।
कर्म-बंध दोनों करें, ज्ञानी जानें सोय॥
स्वयं प्रकाशित चन्द्रमा प्रगटे केवल ज्ञान।
कर्म-भेद मिट आतम में भासें दोउ समान॥
शुद्धातम उपलब्धि ही लक्ष्य सुनिश्चित होय।
क्रमहिं पहुँचना वहीं है, अन्य न मारग कोय॥१-१००॥

पुण्य तथा पाप कर्म में सूक्ष्म अंतर का उदाहरण :—

कर्म शुभाशुभ मूल में हैं चांडाल समान।
चांडाली के युगल ज्यों उपजे बालक जान॥
एक ब्राह्मणी को दिया, एक पला निज द्वार।
यद्यपि मूलहिं एक हैं, दिखते भिन्न प्रकार॥
ब्राह्मण पालित मद तजे करता कुल अभिमान।
चांडाली के घर पला नित्य करे मद पान॥
वेदनीय कर्महिं जनित पाप-पुण्य त्यों दोय।
पाप असात का जनक, पुण्यहि साता होय॥
कर्म-बंध में हेतु पर दोनों एक समान।
घातक योग निरोध के, तजते ज्ञानी जान॥२-१०१॥

शंका—पुण्य और पाप कर्म समान कैसे हैं :—

हेतु, स्वभाव, कर्म—रस—अनुभव, है फल-भेद विचार।
कर्म शुभाशुभ एक से होते कौन प्रकार?
संक्लेशित से अशुभ, शुभ हो विशुद्ध परिणाम।
हेतु भेद सो, शुभ—अशुभ भिन्न स्वभावहिं काम॥
कर्म वर्गणा भिन्न हैं, भिन्न कर्म—रस सोय।
अशुभ कर्म नरकादि दुख, शुभ देवादिक होय॥
शुभ का फल उत्तम मिले, अशुभ हीन पर्याय।
चारों ही में भेद है कैसे एक बताए?

उक्त शंका का समाधान :—

कर्म—बंध में हेतु हैं दोनों ही परिणाम।
कर्महि पुद्गल पिंड हैं, प्रकृति भेद नहिं नाम॥
शुभ कर्मों वश भी बँधा लगे सुखी संसार।
कर्म अशुभ से भी बँधा—दुखी अनेक प्रकार॥
ऐसे यह निश्चित हुआ—सभी कर्म दुख रूप।
दोनों को तज मगन हो रमिए शुद्ध स्वरूप॥३-१०२॥

सभी कर्म बंध के कारण हैं :—

दोनों ही से बंध है, दोनों क्रिया समान।
क्रिया शुभाशुभ मुक्ति की कंटक, क्रमशः जान॥
मोक्ष—मार्ग बस जानिए—कर्म नहीं है कोय।
निजानंद—रस—अनुभवी—मोक्ष पथिक है सोय॥४-१०३॥

पाप—पुण्य से शून्य मन के आलम्बन में शंका :—

सभी सुकृत व्रत आदि हों, या हों विषय कषाय।
सर्व विकल्पों से रहित मोक्ष—मार्ग बतलाय॥
तो आलम्बन—शून्य मन क्या मुनिजन का होय।
उपजी यह शंका घनी स्वामि मेटिए सोय॥

उक्त शंका का समाधान :—

क्रिया शुभाशुभ कोई भी मोक्ष मार्ग हैं नाए।
यह प्रतीत हो और मन स्वानुभूति रम जाए ॥
निश्चय सो अनुभूति ही आलम्वन चितधार।
निजानंद—रस—लीन मुनि होंएँ भवोदधि पार ॥५-१०४॥

शुभाशुभ कर्मों से परे स्वानुभव ही मोक्ष मार्ग है :—

सदा कर्म से मुक्त है, निश्चय जीव स्वरूप।
सो ही अनुभव मोक्ष है, आत्म निराकुल रूप ॥
अन्य शुभाशुभ कर्म हैं सभी बंध के द्वार।
शुभ—सांसारिक सुख मिलें, अशुभहिं दुःख अपार ॥
स्वानुभूति ही है अतः निश्चय मुक्ति स्वरूप।
कर्म सभी अच्छे बुरे क्रमशः हेय विरूप ॥६-१०५॥

शुद्धात्मा और मोक्ष का स्वरूप :—

चित स्वरूप शुद्धात्मा बिन रागादि—कषाय।
चरित स्वरूपाचरण सो आगम में कहलाए ॥
शुद्धपने के जानिए क्रमशः भेद अनन्त।
जाति अपेक्षा सो नहीं निश्चय जानें संत ॥
जितनी होती शुद्धता उतना मुक्ति स्वरूप।
पूर्ण—शुद्धता—कर्म क्षय पूर्ण मोक्ष का रूप ॥
आत्म निराकुलता बढ़े ज्यों—ज्यों अन्तर जान।
त्यों—त्यों जीवहिं मुक्ति है, पूर्णहिं मोक्ष महान ॥
तीनों कालों में सदा सो ही आत्म स्वरूप।
ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता-सकल, जीवहिं द्रव्य अनूप ॥७-१०६॥

सभी कर्म बंध के द्वार हैं :—

सभी शुभाशुभ आचरण नहिं चेतन परिणाम।
सकल कर्म सो हैं नहीं, मोक्ष हेतु में नाम ॥

आत्म द्रव्य से भिन्नता पुद्गल की साकार।
द्रव्य स्वभावहि भेद वश, कर्म बंध का द्वार ।।८-१०७।।

सभी कर्म मोक्ष मार्ग के घातक क्यों हैं ? :—

कर्म शुभाशुभ त्याज्य हैं मोक्ष मार्ग अवरोध।
बंध रूप ही हैं सभी, घातक योग निरोध ।।
जैसे नीर स्वभाव से शीतल निर्मल होए।
कीचड़ के संयोग से मिटे शुद्धता सोए ।।
तैसे जीव स्वभाव से निश्चय शुद्ध स्वरूप।
विषय-कषाय अनादि के कारण हुआ विरूप ।।
कार्य शुभाशुभ कर्महि त्यों–कर्म बंध के द्वार।
दर्श--ज्ञान--सुख--वीर्य का जीव अमित भंडार ।।९-१०८।।

मोक्षार्थी को सभी कर्म त्यागने योग्य हैं :—

मोक्षार्थी को त्याज्य हैं पूर्व कथित सब कर्म।
पुण्य--पाप क्रमशः नहीं शुद्ध जीव के धर्म ।।
जैसे सूर्य प्रकाश से अन्धकार विनशाए।
ज्ञान उदय से सहज ही जीव मोक्ष त्यों जाए ।।
मोक्ष--मार्ग सम्यक कहा, दर्शन--ज्ञान--चरित्र।
निर्विकल्प, चैतन्य युत शुद्ध ज्ञान सो मित्र ।।
दर्शन--ज्ञान--चरित कहो अथवा केवल ज्ञान।
ज्ञानहि शुद्ध स्वरूप में सबको गर्भित जान ।।१०-१०९।।

ज्ञान युक्त क्रिया से विशेष हानि नहीं है :—

शुद्ध स्वरूपहि परिणमन मात्र मोक्ष हित मान।
क्रिया रूप सविकल्प सब बंधहि कारण जान ।।
ज्ञान, कर्म का एकपन जब तक जीवहि होए।
स्वानुभूति वश जीव की हानि विशेष न कोए ।।
शुद्ध ज्ञान के साथ ही विवश कर्म की धार।
सत्ता और स्वरूप से निश्चय जुदा विचार ।।

बंध हेतु ही है सदा यद्यपि कर्महि रूप।
शुद्ध ज्ञान जल धार के कारण मोक्ष स्वरूप ॥११-११०॥

बिना स्वानुभूति के कहनें भर से मोक्ष मार्ग नहीं है :—

पक्षपात से समझ कर क्रिया मोक्ष का द्वार।
अज्ञानी निज-रस-विरत, मग्न कर्म-जल धार॥
डूब रहे वे भी, नहीं अनुभव शुद्ध स्वरूप।
कहने भर को कह रहे—मोक्ष मार्ग निज रूप॥
वीतराग रह कर करें क्रिया सभी चित धार।
जीव प्रमाद विहीन सो, होंएँ भवोदधि पार ॥१२-१११॥

अतत: कर्मो की नाशक ज्ञान-ज्योति प्रगट होती है :—

मद्यप सम अति मोह वश किया शुभाशुभ भेद।
स्वानुभूति-रस से हुए कर्म सभी उच्छेद॥
अपनी पूरी शक्ति से प्रगटा ज्ञान-प्रकाश।
सहज अतीन्द्रिय सुख सहित, तम का हुआ विनाश॥
पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ के प्रश्न हुए सब शांत।
मोक्ष--स्वात्म-रस, अनुभवन निकला सत सिद्धांत ॥१२-११२॥

सारांश — दान, दया, तप, शील आदि पुण्य कर्म है तथा विपय, कपाय एवं हिंसादि पाप रूप क्रियाएँ है। तथापि पाप की अपेक्षा पुण्य क्रियाएँ श्रेष्ठ हैं। पाप को लोहे की वेड़ी तथा पुण्य को सोने की वेड़ी कह सकते हैं। जिस प्रकार लोहे के आभूपण कोई नहीं पहनता सोने के ही पहने जाते है यद्यपि सात्विकता तथा सादगी की दृष्टि से वे भी वोझ ही है। उसी प्रकार मोक्ष मार्ग की दृष्टि से शुभ और अशुभ दोनों ही प्रवृत्तियाँ हेय तथा शुद्धोपयोग ही उपादेय है। १११ वें काव्य में बड़ी सूक्ष्म वात कही है कि विना स्वात्म अनुभूति के केवल कहने भर से कोई मोक्ष मार्गी नहीं हो जाता। निराकुलता तथा आत्म स्वरूप का अनुभव ही वास्तविक मोक्ष मार्ग है।

चतुर्थ पुण्य पाप अधिकार समाप्त
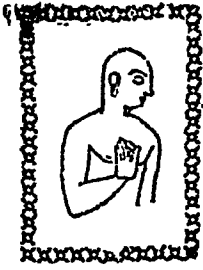
(५)
आस्रव अधिकार

अब आस्रव को नष्ट करने वाले ज्ञान की प्रशंसा करते हैं :—

पुण्य-पाप पश्चात् भवि यह आस्रव अधिकार।
फँस अनादि से जेहि वश भ्रमित जीव संसार।।
मग्न महा मद में हुआ अविजित निज को जान।
समर–भूमि में दुष्ट सम घूमे वश अभिमान।।
ज्ञान–सुभट सम्मुख हुआ अति उदार, गंभीर।
कर्मास्रव सब ही मिटा, जयतु धनुर्धर वीर।।१-११३।।

कर्मास्रव किस प्रकार रुकता है :—

पुदगल आत्म प्रदेश पर सो द्रव्यासव जान।
राग–द्वेष–मोहादि ही हैं भावास्रव मान।।
काल लब्धि से जीव में हो सम्यक्त्व प्रकाश।
राग--द्वेष--मोहादि का तत्क्षण होए विनाश।।
उन विभाव के विनशते, रुके कर्म की धार।
शुद्ध भाव, सम्यक्त्व की महिमा अगम अपार।।२-११४।।

ज्ञानी सदा ही कर्मास्रव विहीन है :—

राग--द्वेष--मोहादि का करके पूर्ण विनाश।
भावास्रय यो मेंट कर पाता अमित प्रकाश।।
द्रव्यास्रव से स्वतः ही जीवहिं भिन्न स्वभाव।
भावास्रव मिटते हुआ द्रव्यास्रवहिं अभाव।।
सदा ज्ञानमय जीव सो ज्ञायक जाननहार।
सिद्ध हुआ, आस्रव रहित, निर्विकल्प, अविकार।।३-११५।।

द्रव्य कर्म की सत्ता होने पर भी ज्ञानी निरास्रव है :—

बोध--गम्य परिणाम में आत्म बुद्धि नहिं धार।
अरु अग्राह्य उपजें नहीं करता शलत विचार।।

छुट अनादि मिथ्यात्व से, तज रागादि कषाय।
जीव स्वभावहिं परिणमित, बिन आस्रव हो जाए।।
ज्ञानी करे स्वरूप का अनुभव बारम्बार।
ज्ञान-भवन सो सहज ही होए भवोदधि पार।।४-११६।।

पूर्वोक्त कथन में शंका :—

सम्यग्दृष्टी जीव के सामग्री सब जान।
भोग और उपभोग की मिथ्यादृष्टि समान।।
जीव प्रदेशहिं परिणमा पुदगल पिंडहिं रूप।
मोहनीय कर्मादि की स्थिति बंध विरूप।।
जितनी, जैसी बंधी थी वैसी रही विराज।
ज्ञानी आस्रव से रहित फिर भी है केहि काज।।
यदि तेरे मन यह हुआ शंका पूर्ण विचार।
समाधान आगे सुनो शिष्य लेहु चित धार।।५-११७।।

इस शंक का समाधान :—

राग-द्वेष-मोहादि से रहित परिणमन होए।
कर्म-बंध होता कभी ज्ञानी के नहिं सोए।।
यद्यपि सत्ता में रहें पूर्व-बद्ध सब कर्म।
कर्म-बंध नूतन नहीं ज्ञानी के यह मर्म।।
सभी शुभाशुभ कर्म—फल सम्यग्दृष्टि समान।
उदय काल में भोगता उदासीन रह जान।।
नित्य-क्रिया करते हुए रहें स्वात्म—रस लीन।
सकल नयों से भव्य सो कर्मास्रवहिं विहीन।।६-११८।।

ज्ञानी के राग-द्वेष-मोहादि न होने से कर्म बंधन नहीं होता :—

राग, द्वेष, मोहादि के होते नहिं परिणाम।
ज्ञानी के सो है नहीं कर्म-बंध का काम।।७-११९।।

कर्म–वंध से रहित होने का फल :—

भवि जो शुद्ध स्वरूप का करें निरंतर ध्यान।
सकल कर्म—मल से रहित, पावें मोक्ष महान॥
राग--द्वेष--मोहादि तज, कर त्रय योग निरोध।
कर्म--बंध से विधुर वे पाते सम्यक बोध॥
निजानंद—रस में मगन समयसार चितधार।
सरल स्वभावी भव्य ही होंएँ भवोदधि पार॥८-१२०॥

कर्मास्रव में उपमा :—

औपशमिक, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि सुजान।
लोहकार–सँडसी तथा इनकी दशा समान॥
ज्यों सँडसी जल–अग्नि में जावे बारम्बार।
त्यों छुटते सम्यक्त्व के कर्म बँधें चितधार॥
पुनि सम्यक्त्व प्रकाश से मोह जनित सब कर्म।
कीलित नाग समान हों शक्तिहीन, यह मर्म॥
द्रव्यास्रव कृत कर्म का यह विचित्र जंजाल।
स्वानुभूति से काटते भविजन ही तत्काल॥९-१२१॥

आस्रव अधिकार का संक्षेप में सार :—

इस आस्रव अधिकार का इतना ही है सार।
शुद्ध--आत्म--अनुभूति ही उपादेय चितधार॥
भविजन! यदि छूटे नहीं अनुभव शुद्ध स्व–रूप।
कर्म–बंध नूतन नहीं, छूटते बँधे विरूप॥१०-१२२॥

शुद्ध आत्मानुभव का फल :—

क्षण भर भी नहिं त्याज्य है अनुभव शुद्ध स्वरूप।
महा अतीन्द्रिय सुख–सदन, विमल, अनाकुल रूप॥
आदि–अंत बिन, महिम अति, कर्म नशावनहार।
शुद्ध आतम का बोध है, धीरोदात्त, उदार॥

पूर्ण चेतना-पुंज सो निर्विकल्प पद जान।
निज स्वरूप के अनुभवी पाते मोक्ष महान॥
इन्द्रियादि, स्व-शरीर में आत्म-बुद्धि चितधार।
भ्रमित जीव संसार के हों न भवोदधि पार॥११-१२३॥

रागादि के अभाव से अविनाशी आत्म-प्रकाश का प्रगटीकरण :—

राग-द्वेष-मोहादि को तत्क्षण ही विनशाए।
सकल ज्ञेय प्रतिबिम्बवत निज दर्पण झलकाए॥
भावश्रुतहिं ज्ञानादि के द्वारा हो साकार।
अवलम्बन प्रत्यक्षवत शुद्ध आत्म चितधार॥
निज अकथ्य कुछ वस्तु में दृढ़तर कर विश्वास।
निर्विकल्प, चैतन्य युत प्रगटा आत्म-प्रकाश॥
अतुल, अखंड, महान अति, धारक शक्ति अनन्त।
स्थिर काल अनन्त तक निश्चय जानें संत॥१२-१२४॥

सारांश :—आस्रव कर्मों के आगमन को कहते हैं। राग-द्वेष-मोहादि भाव-आस्रव तथा अशुद्ध आत्मा के द्वारा कार्माण-वर्गणारूप पुद्गल प्रदेशों का आकर्षित होना द्रव्य-आस्रव है। इन दोनों प्रकार के आस्रवों का पूर्ण अभाव पूर्ण सम्यग्ज्ञानी जीव के ही सम्भव है, तथापि ज्यों-ज्यों ज्ञान में निर्मलता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों आस्रव में भी कमी होती है। शरीरादि में अहं-बुद्धि न रखने के कारण ज्ञानी के चाहे वह अव्रती ही हो आस्रव में बहुत कमी हो जाती है।

११७ वें काव्य में बड़ी सूक्ष्म बात कही गई है कि सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टी जीव के पास भोग-उपभोग की सामग्री एक समान होने पर भी सम्यग्दृष्टी आस्रव से रहित क्यों है? ११८ में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि ज्ञानी के यद्यपि पूर्व-बद्ध कर्म सत्ता में रहते हैं पर राग-द्वेष-मोहादि का अभाव होने से तथा कर्म-फल को उदासीन भाव से भोगने के कारण नवीन कर्मों का आस्रव नहीं होता।

१२१ वें काव्य में तुहार की डँडसी के उदाहरण से स्पष्ट किया है कि उपशम और क्षयोपशम की दशा में कुछ न कुछ कर्मास्रव होता-छूटता रहता है। १२२ वें काव्य में इस अधिकार का सार दिया है कि 'शुद्ध आत्म अनुभूति ही एक मात्र उपादेय तथा कर्मास्रव रोकने में समर्थ है।

पंचम आस्रव अधिकार समाप्त

(६)
संवर अधिकार

अब संवर का वर्णन करते हैं :—

आस्रव के वश जीव हो भ्रमित फिरे संसार।
संवर के द्वारा रुके मलिन कर्म की धार ।।
जयतु वीर संवर सुभट तोड़े आस्रव मान।
चेतन–पुंज, प्रकाश–युत प्रगटे वस्तु महान ।।
सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, नहीं होए तद्रूप।
तासों रहे परान्मुख, रमण करे निज रूप ।।१-१२५।।

ज्ञान और राग की भिन्नता का वर्णन :—

निर्मल, ज्ञान समूह है, निर्विकल्प, अम्लान।
जड़–चेतन की भिन्नता करे भेद–विज्ञान ।।
सूक्ष्म–दृष्टि–अंतर सहज आरे के सम जान।
राग–ज्ञान दो भाग कर कीचड़–जलहि समान ।।
हेय वस्तु अवलम्बते नहीं अनुभवी संत।
शुद्ध ज्ञान अनुभूति की महिमा अगम, अनन्त ।।२-१२६।।

शुद्धात्मा में रमण करने से संवर होता है :—

काल--लब्धि से जब कभी पा सम्यक्त्व अपार।
कर्मास्रव सब रोकता ज्ञान गुणहिं जल--धार ।।
पर परिणति से हो विलग रमता निजहिं स्वरूप।
शुद्ध जीव निश्चय वही है परमात्म अनूप ।।३-१२७।।

शुद्धात्मानुभव ही अंततः मोक्ष-दाता है :—

ऐसे जो रस मग्न हैं जीवहिं शुद्ध स्वरूप।
सकल कर्म--मल से रहित पाते वस्तु अनूप ।।
शक्ति--भेद--विज्ञान से, कर्म सभी विनशाए।
सार्थक करते मनुष--भव अक्षय पद को पाए ।।४-१२८।।

निजानुभव का भव्य जन नित्य करें अभ्यास।
स्वानुभूति - रस के बिना मुक्ति न आवे पास ॥११-१४३॥

शुद्धात्मानुभव ही चिंतामणि रत्न के समान है :—

निर्विकल्प चिद्रूप का अनुभव बारम्बार।
मगन अतीन्द्रिय सुख सदा सम्यग्दृष्टि विचार ॥
अन्य विकल्पों से कहो कार्य सिद्ध क्या होए।
अनुभव शुद्ध स्वरूप ही चिन्तामणि सम सोए ॥
स्वानुभूति युत ज्ञान की शक्ति अचिन्त्य अपार।
भ्रमण चतुर्गति का मिटा, करे भवोदधि पार ॥१२-१४४॥

ज्ञानी सभी परिग्रह का त्याग करता है :—

"सभी परिग्रह त्याज्य हैं" अब तक था उपदेश।
निज - पर का भ्रम दूर हो सो अब कथन विशेष ॥
मिथ्यादृष्टी के नहीं होता स्व - पर विवेक।
भ्रमवश ही सो जानता जीव - कर्म को एक ॥
सम्यग्दृष्टी जीव के भेद - बुद्धि चितधार।
ताहि परिग्रह है नहीं किंचित किसी प्रकार ॥१३-१४५॥

ज्ञानी के परिग्रह भाव नहीं होता :—

पूर्व - बद्ध - कर्महि - उदय सामग्री सब होए।
भोग और उपभोग की ज्ञानी के भी सोए ॥
भोग भोगते भी कभी, नहीं परिग्रह भाव।
राग - द्वेष - मोहादि का निश्चय पूर्ण अभाव ॥
कर्म - बंध याते नहीं सम्यग्दृष्टी भोग।
वरन निर्जरा पूर्व की करते ज्ञानी लोग ॥१४-१४६॥

ज्ञानी के भोगों की लालसा नहीं होती :—

भोगों की इच्छा नहीं करते ज्ञानी लोग।
पूर्ण विरत परिणाम से करें भोग - उपभोग ॥

निर्जरा अधिकार

अब निर्जरा का वर्णन करते हैं :—

संवर के पश्चात भवि प्रगट निर्जरा होय।
पूर्व--बद्ध कर्महि दहन हेतु अग्नि सम सोय ॥
राग--द्वेष–मोहादि सब जो हैं आस्रव भाव।
कर निरोध निज शक्ति से सबका किया अभाव ॥
धारण कर संवर विमल रोके कर्म विरूप।
अब स्वागत है निर्जरा प्रगटे शुद्ध स्वरूप ॥१-१३३॥

ज्ञान की सामर्थ्य का वर्णन :—

अनुभव शुद्ध स्वरूप की है सामर्थ्य अपार।
सम्यग्दृष्टी जीव सो निश्चय हो भव पार ॥
अथवा रागादिक विरत ज्ञानी महिमावान।
कर्म, भोग सब भोगता करे निर्जरा जान ॥
ज्ञानी के नूतन नहीं कर्म–बंध चितधार।
सो ज्ञानी के भोग भी कहे निर्जरा द्वार ॥२-१३४॥

ज्ञानी भोग भोगते हुए भी निर्जरा करता है :—

भोग भोगते भी नहीं भोगी ज्ञानी जान।
ताते इन्द्रिय–भोग–फल — कर्म–बंध नहिं मान ॥
महिमा ज्ञान, विराग की — विरत भोगते भोग।
सुख–दुख जीव स्वरूप नहिं, जानें ज्ञानी लोग ॥
याते ज्ञानी–भोग भी कहे निर्जरा द्वार।
महिमा ज्ञान विवेक की अनुपम, अगम, अपार ॥३-१३५॥

सम्यग्दृष्टी का लक्षण :—

आत्म स्वरूपहि अनुभवन, पर से पूर्ण विराग।
सम्यग्दृष्टी जीव के सहज आत्म अनुराग ॥

शुद्ध चेतना मात्र है निश्चय आत्म स्वरूप।
द्रव्य–भाव–नो कर्म वश पुदगल के सब रूप ॥
कहने ही भर को नहीं, जब अनुभव में आए।
स्व–पर भेद, तब जीव वह सम्यग्दृष्टि कहाए ॥४-१३६॥

जिन्हें आत्मा–अनात्मा का ज्ञान नहीं वे सम्यक्त्व रहित हैं :—

भोग काल आशक्त है मिथ्यादृष्टी जान।
सो कारणवश पापमय उसे सदा ही मान ॥
मग्न विषय सुख में, नहीं अनुभव रूप कुरूप।
उपादेय क्या, हेय क्या, ज्ञात न आत्म स्वरूप ॥
भोग भोगता स्वयं को सम्यग्दृष्टी मान।
"कर्म–बंध मुझको नहीं"—व्यर्थ समझता जान ॥
गाल फुलाए मान से श्रावक या मुनिराज।
कर्म–बंध, भव–भव भ्रमण, बिन अनुभूति जहाज ॥५-१३७॥

रागी जीव का वर्णन करते हैं :—

जो अनादि से सुप्त हैं समझ स्वयं पर्याय।
कर्म उदय वश चार गति भ्रमित जीव असहाय ॥
सो सब मिथ्या ज्ञान है मद्यप ज्ञान समान।
मार्ग तजो पर्याय का लो पथ मोक्ष महान ॥
अविनश्वर निज-रस-भरित, उज्जवल आत्म अनूप।
उस पथ में चैतन्य का निखरा शुद्ध स्वरूप ॥६-१३८॥

अत्मानुभूति ही उपादेय है :—

मोक्ष हेतु चैतन्य का भविजन लीजे स्वाद।
भेद विकल्पों से रहित निश्चय बिना विवाद ॥
सुख–दुख, विपदा चार गति का हो पूर्ण अभाव।
राग–द्वेष निज रूप नहिं, भासे शुद्ध स्वभाव ॥७-१३९॥

आत्मा और ज्ञान की एकता का वर्णन :—

काष्ठ, तृणादिक अग्नि सम, मति, श्रुतादि सब मान ।
अग्नि स्वभावहि उष्णता, चेतन का गुण ज्ञान ।।
कहने भर को भेद वे, सो केवल उपचार ।
चेतन ज्ञान स्वरूप है निर्विकल्प चितधार ।।
निज स्वभाव रस मग्नता स्वाद अनाकुल सोए ।
सुख–दुख इन्द्रिय जन्य से आकुलता ही होए ।।
निश्चय ही सो जानते सम्यग्दृष्टी मान ।
करें कर्म की निर्जरा पावें मोक्ष महान ।।८-१४०।।

जीव की सागर से उपमा :—

जीव द्रव्य है उदधि सम द्रव्यार्थिक नय एक ।
पर्यायार्थिक देखिए लहरें उठें अनेक ।।
मति, श्रुति आदि तरंग हैं ज्ञान गुणहि को जान ।
दर्श–ज्ञान–सुख–वीर्य से जीवहि महिमावान ।।
सत्ता से सो एक है, अद्भुद सुख आगार ।
निर्विकल्प इक–ज्ञान का जीव अमित भंडार ।।
निर्मलतम, ज्ञायक—सकल, दिव्यौषधि रस लीन ।
आनंदित रहते सदा आतम—ज्ञान प्रवीन ।।९-१४१।।

आत्म ज्ञान के विना सब क्रियाएँ व्यर्थ हैं :—

पंच महाव्रत पालना, तप आदिक अति घोर ।
ज्ञान विना कर समझते—गमन मुक्ति की ओर ।।
ज्ञान हीन, अनुभव विना क्रिया सभी हैं व्यर्थ ।
स्वानुभूति–रस–मग्न भवि केवल मोक्ष सकर्थ ।।१०-१४२।।

अतः स्वानुभूति ही उपादेय है :—

इस कारण से भव्य जान ध्यावें आत्म स्वरूप ।
ज्ञान विना निश्चय क्रिया होती व्यर्थ, विरूप ।।

निजानुभव का मार्ग इक नित्य करें अभ्यास ।
स्वानुभूति-रस के बिना मुक्ति न कोई पाय ॥१४५-१४६॥

शुद्धात्मानुभव ही चिन्तामणि रत्न के समान है :—

निर्विकल्प चिद्रूप का अनुभव बारम्बार ।
पावन अतीन्द्रिय सुख सदा सम्यग्दृष्टि विचार ॥
अन्य विकल्पों से कहो कार्य सिद्ध क्या होय ।
अनुभव शुद्ध स्वरूप ही चिन्तामणि सम सोय ॥
स्वानुभूति युत ज्ञान की शक्ति अचिन्त्य अपार ।
भ्रमण चतुर्गति का मिटा, करे भवोदधि पार ॥१४७-१४८॥

ज्ञानी सर्व परिग्रह का त्याग करता है :—

"सभी परिग्रह त्याज्य हैं" यह जिन का उपदेश ।
निज-पर का भ्रम दूर हो सो यह कथन विशेष ॥
मिथ्यादृष्टी के नहीं होता स्व-पर विवेक ।
अपवश हो वो मानता जीव-कर्म को एक ॥
सम्यग्दृष्टी जीव के भेद-बुद्धि चिनधार ।
ताहि परिग्रह है नहीं किंचित किसी प्रकार ॥१४९-१५०॥

ज्ञानी के परिग्रह भाव नहीं होता :—

पूर्व-बद्ध-कर्मादि-उदय सामग्री सब होय ।
भोग और उपभोग की ज्ञानी के भी योग ॥
भोग भोगते भी कभी, नहीं परिग्रह भाव ।
राग-द्वेष-मोहादि का निश्चय पूर्ण अभाव ॥
कर्म-बंध पावे नहीं सम्यग्दृष्टी लोग ।
करत निर्जरा पूर्व की करते ज्ञानी भोग ॥१५१-१५२॥

ज्ञानी के भोगों की वाञ्छा नहीं होती :—

भोगों की इच्छा नहीं करते ज्ञानी लोग ।
पूर्ण विरत परिणाम से करें भोग-उपभोग ॥

मन - वांछित सब वस्तुएँ, उनकी इच्छा जान।
सभी अथिर हैं, दुख - सदन, भोगे ज्ञानी मान॥
सम्यग्दृष्टी याहि से 'निर्वांछक' कहलाए।
भोगों में भी निर्जरा कर्मों की हो जाए॥१५-१४७॥

ज्ञानी के अपरिग्रह भाव में रहना :—

ज्यों बिन हरड़ा, फिटकरी कपड़ा होए न लाल।
चाहे रंग मजीठ में पड़ा रहे चिरकाल॥
त्यों बिन ममता, राग के चढ़े न भोगहि रंग।
कर्म - बंध होता नहीं, होए निर्जरा संग॥
भोगों में रहते हुए नहीं परिग्रह भाव।
विरत राग - रस भोगता, बिन लिप्सा, बिन चाव॥
बिना परिग्रह सो सदा सम्यग्दृष्टि विचार।
चाहे भोग - विलास का भरा रहे भंडार॥१६-१४८॥

ज्ञानी भोगों में अलिप्त रहता है :—

सर्व - राग - रस हीनता निश्चय जीव स्वभाव।
ज्ञानवान अनुभव करे, रमता निज रस भाव॥
भोगे भोग अलिप्त रह कर्मोदय वश सोए।
कर्म - बंध नूतन नहीं, वरन निर्जरा होए॥१७-१४९॥

वस्तु का स्वभाव नहीं बदलता :—

हे ज्ञानी ! तेरे नहीं कर्म - बंध है नेक।
कर्मोदय से प्राप्त जो भोगे भोग अनेक॥
द्रव्य सदा रहता वही जैसा हो निज भाव।
अन्य वस्तु से कभी भी बदले नहीं स्वाभाव॥
जैसे शंख सदा रहे श्वेत वर्ण चितधार।
काली, पीली खाए कर माटी विविध प्रकार॥
तैसे भोगे भोग पर छोड़े नहीं विवेक।
सो ज्ञानी के निर्जरा, कर्म - बंध नहिं एक॥१८-१५०॥

"ज्ञानी के कर्म-बंध नहीं"—इसमें विशेष कथन :—
"कर्म - बंध ज्ञानी नहीं" यद्यपि दिया बताए।
पर विशेष कथनी सुनो, हे भविजन ! चितलाए ॥
'कर्म - बंध मेरे नहीं' समझ न हो स्वच्छंद।
डूब ज्ञान - मद, लिप्त जन पड़े कर्म के फंद ॥
सम्यग्दृष्टी के कहा यद्यपि बंध न जान।
पर छुटते सम्यक्त्व के बंधन कर्म महान ॥
निज मद, अपसे दोष से निश्चय जानो सोए।
रागादिक परिणाम वश बंध होए ही होए ॥१९-१५१॥
रागी मनुष्य के कर्म-वंध होता ही है :—
ज्ञानी - अज्ञानी - क्रिया, बाह्य भेद नहिं कोए।
फल - आशा के भेद से, निश्चय अंतर होए ॥
सम्यग्दृष्टि स्वभाव से फल - आशा नहिं धार।
विषय - भोग सब भोगता कर्मों के अनुसार ॥
वही क्रिया करता हुआ मिथ्यादृष्टि अजान।
फल - लिप्सा में विकल हो बाँधे कर्म महान ॥
सो भावों के भेद से मूढ़ बँधावे कर्म।
कर्म - बंध ज्ञानी नहीं, वरन निर्जरा मर्म ॥
हो अनिष्ट - संयोग या होवे इष्ट - वियोग।
समता से सब भोगते सम्यग्दृष्टी लोग ॥२०-१५२॥
ज्ञानी क्रिया करते हूए भी अकर्ता है :—
विषय - भोग में सर्वथा फल - आशा दी त्याग।
छोड़ा सभी ममत्व अरु उपजा मनहिं विराग ॥
सो ज्ञानी बाँधे करम—होती नहीं प्रतीति।
इच्छा बिन होती क्रिया ज्ञानी जन की रीति ॥
अभिलाषा का पूर्णतः सम्यग्दृष्टि अभाव।
ज्ञानी ज्ञायक रूप है, निश्चल ज्ञान स्वभाव ॥

सो ज्ञानी करता क्रिया, रहे अकर्ता जान।
बंध न नूतन, निर्जरा करते मोक्ष महान ।।२१-१५३।।

सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव निर्भय होते हैं :—

दुःख, परीषह, वज्र से अज्ञानी भय खाए।
च्युत होवे कर्तव्य से, भूल हिताहित जाए ।।
सम्यग्दृष्टी जीव के भय का सहज अभाव।
सप्त भयों को छोड़ कर रमता शुद्ध स्वभाव ।।
समता - सुख - दुख सहन में निश्चय होए समर्थ।
स्वानुभूति से च्युत न हो वज्रपात हों व्यर्थ ।।
ज्ञान रूप जिसका विमल शाश्वत गुण साकार।
सो स्वरूप अनुभूति ही सहज निर्जरा द्वार ।।२२-१५४।।

ज्ञानी को लोक-परलोक का भय नहीं होता :—

नित्य, निरंतर, भय रहित, तज सब विषय-कषाय।
ज्ञानी सहज स्वरूप को आप आप में ध्याय ।।
लोक और परलोक भय ज्ञानी को क्यों होए।
सप्त भयों से रहित है सहज निशंकित सोए ।।
तेरा तो चिद्रूप ही लोक सर्वथा जीव।
लोक न कुछ परलोक कुछ, निजानंद रस पीव ।।
निर्विकल्प चैतन्य है आतम ज्ञान स्वरूप।
आप स्वयं को देखता ऐसा तत्व अनूप ।।
शाश्वत, एक, त्रिलोक में ज्ञानी को साकार।
भेद – ज्ञान से प्रगट है सो आतम अविकार ।।२३-१५५।।

ज्ञानी को वेदना भय भी नहीं होता :—

सदा निरंतर अनुभवे अपना शुद्ध स्वरूप।
सहज निशंक रहे सदा ज्ञानी अभय, अनूप ।।
सम्यग्दृष्टी जीव को वेदन भय न सताए।
नित्य, अनाकुल, अचल, इक, वेदन ज्ञान लहाए ।।

कर्मोदय वश अन्य जो दुख - सुख वेदन होए।
निश्चय ही सो जीव का है स्वभाव नहिं कोए॥
जो वेदक सो वेद्य है निश्चय वस्तु स्वरूप।
वेदन सुख - दुख अन्य हैं केवल छाया - धूप ॥२४-१५६॥

ज्ञानी के अरक्षा भय नहीं होता :—

जो कुछ सत्तावान है नष्ट न होता मान।
अविनश्वरपन वस्तु का प्रगट इसी से जान॥
'रक्षक - भक्षक आत्म का अन्य नहीं है कोए'।
ज्ञानी निश्चय जानता, रहे निशंकित सोए॥२५-१५७॥

ज्ञानी को अगुप्ति तथा चोरी का भय नहीं होता :—

सहज, अनादि स्वरूप का निश - दिन लेवे स्वाद।
रह निशंक, तज गुप्ति - भय विचरे बिना विवाद॥
लक्षण द्रव्य स्वरूप का प्रगट सर्वथा सोए।
एक द्रव्य पर द्रव्य में कभी प्रविष्ट न होए॥
आत्म द्रव्य चैतन्य युत सो ही ज्ञान स्वरूप।
कर्ता - हर्ता अन्य नहिं, ना कर. सके विरूप॥
सम्यग्दृष्टी जीव के होवें यही विचार।
चोरी - भय कैसे रहे ऐसे में चितधार॥२६-१५८॥

ज्ञानी के मृत्यु का भय नहीं होता :—

अभय मरण - भय से रहे, ज्ञानी करे विचार।
आत्म - मरण होता नहीं किंचित किसी प्रकार॥
इन्द्रिय, बल, उच्छ्वास त्रय, चौथा आयुस प्रान।
नाश इन्हीं का जगत में मरण कहावे जान॥
शुद्ध चेतना मात्र ही प्राण आत्म का होए।
शाश्वत, अविनश्वर सदा सहजहिं रहता सोए॥
यह विचार, ज्ञानी सदा रहता सहज निशंक।
अज्ञानी व्याकुल फिरे, डरा मरण - भय - डंक॥२७-१५९॥

ज्ञानी के आकस्मिक भय नहीं होता :—

आकस्मिक - भय से रहित ज्ञानी करे विचार।
आकस्मिक चिद् में नहीं, किंचित किसी प्रकार॥
जैसा, जितना आप है सहज शुद्ध चैतन्य।
तीन काल वैसा रहे कभी न होवे अन्य॥
आदि - अन्त बिन, सिद्ध सम, निर्विकल्प चितधार।
ज्ञानी आस्वादे सदा, निज स्वरूप अविकार॥२८-१६०॥

सम्यग्दृष्टी सदा कर्मों की निर्जरा करता है :—

सम्यग्दृष्टी जीव का शुद्ध परिणमन होए।
अष्ट - कर्म की निर्जरा सहज, निरंतर सोए॥
कर्म - बंध नूतन नहीं किंचित किसी प्रकार।
पूर्व बद्ध निश्चय गलें, वहें निर्जरा धार॥
अष्ट अंग सम्यक्त्व से होकर महिमावान।
अष्ट - कर्म - अरि भेदता, भेदज्ञान - किरपान॥२९-१६१॥

ज्ञानी सदा निराकुल रह कर्मों की निर्जरा करता है :—

ज्ञानी ज्ञान स्वरूप हो भोगे निज परिणाम।
निजानंद रस लीनता है शाश्वत विश्राम॥
अष्ट अंग सम्यक्त्व के डूबे उनके रंग।
कर्म बंध नूतन नहीं, होए निर्जरा संग॥३०-१६२॥

सारांश :—पहले से बँधे हुए कर्मों का नाश होना ही निर्जरा है। भोग—उपभोग की सामग्री एक समान होते हुए भी ज्ञानी अपने विशुद्ध परिणामों तथा फलेच्छा से निर्पेक्ष रहते हुए कर्मों की निर्जरा करता है तथा अज्ञानी कर्म - बंध। इसमें श्रावक अथवा साधु का भेद नहीं है। इसी को १३७ वें काव्य में स्पष्ट किया है कि जिसके भी निर्मल परिणाम नहीं हैं तथा मान - कषायं से युक्त है उसके कर्म - बंध अवश्य होता है।

सप्तम निर्जरा अधिकार समाप्त

(८)
बंध – अधिकार

अब कर्म - बंध का वर्णन करते हैं :—

जीव राशि सब कर स्व-वश, अति घमंड चितधार।
मोह - महा - मद ढ़ाल कर, उपजाता अविचार॥
बंध नचाता जीव को यों अनादि से जान।
गर्व दला उस दुष्ट का जय सम्यक्त्व महान॥
धीर, उदार, अनाकुलित, मोह - तिमिर कर दूर।
मिला अतीन्द्रिय सुख सहज निजानंद भरपूर॥१-१६३॥

कर्म-बंध का वास्तविक कारण बताते हैं :—

कर्म वर्गणा, योग त्रय बंध न कारण कोए।
हिंसा, भोग - विलास से कर्म - बंध नहिं होए॥
पंचेन्द्रिय, मन भी नहीं बंधन कारण मान।
राग—द्वेष—मोहादि का जो संयोग न जान॥
राग—द्वेष मोहादि ही निश्चय बंधन रूप।
फँस इनमें जीवात्मा भ्रमे अनादि विरूप॥२-१६४॥

कर्म-बंध के उपरोक्त कारण की पुनः पुष्टि करते है :—

कर्म वर्गणा से भरा लोकाकाश विचार।
स्पन्दित हो त्रय योग से आत्म प्रदेश हजार॥
पंचेन्द्रिय मन भी वही, हिंसादिक भी होए।
कर्म—बंध फिर भी नहीं रागादिक नहिं जोए॥
भोग भोगते, भोग बिन निश्चय ही सो जान।
सम्यग्दृष्टी जीव को कर्म—बंध नहि मान॥
रागादिक परिणाम तज रहता ज्ञान स्वरूप।
निजानुभव की भव्यजन ! महिमा अगम, अनूप॥३-१६५॥

प्रमाद से भोग भोगने वाला ज्ञानी नहीं है :—

यद्यपि कारण बंध का रागादिक ही मान।
फिर भी भोग प्रमाद वश बंधहि कारण जान॥
ज्ञान, भोग की वांछा, भिन्न क्रिया हैं दोए।
भोगादिक में रुचि जिसे कभी न ज्ञानी होए॥
ज्ञानी के नहि वांछा किंचित किसी प्रकार।
कर्म जनित सब भोग सो भोगे हेय विचार॥४-१६६॥

ज्ञानी—अज्ञानी की क्रियाओं से कर्म-बंध में अंतर का कारण :—

अभिलाषा पर द्रव्य में अज्ञानी के होए।
सम्यग्दृष्टी जीव के कभी न होती सोए॥
भोग भोगता मगन हो मिथ्यात्वी ही जान।
सम्यग्दृष्टी भोग में रहे विरक्त समान॥
भोग राग, अभिलाष ही कर्म-बंध के द्वार।
ज्ञानी के सो है नहीं किंचित मात्र विचार॥
मिथ्यात्वी के बंध सो, ज्ञानी बंध न कोए।
क्रिया एक, फल भिन्न हैं, निश्चय जानो सोए॥५-१६७॥

कोई किसी अन्य को सुख-दुख नहीं देता :—

सुख-दुख देता अन्य को अन्य न कोई जान।
पूर्व-बद्ध परिणाम वश कर्महि ले सो मान॥
हानि-लाभ, जीवन-मरण निज कर्महि सम होए।
सर्वकाल, निश्चय, नियत—'अन्य न कर्ता कोए'॥
"सुख-दुख देता अमुक को मैं ही विविध प्रकार"।
अहं-बुद्धि से मूढ़ जन यह करते अविचार॥
कर्म-बंध कारण सदा होता मिथ्या भाव।
सम्यग्दृष्टी जान सो रमता निजहि स्वभाव॥६-१६८॥

अपने को कर्ता मान कर अज्ञानी दुखी रहता है :—

कर्मोदय से क्रिया सब, मिलतीं सब पर्याय।
जन्म - मरण के चक्र में भ्रमे जीव असहाय ॥
"भला - बुरा, जीवन - मरण पर का पर से होए।"
निश्चय मिथ्यादृष्टि है ऐसा माने जोए ॥
अहंभाव में मग्न वह निज को कर्ता मान।
आत्म - शांति - हंता, विकल पाता कष्ट महान ॥७-१६९॥

अज्ञानी की अहंबुद्धि का वर्णन :—

"सुख - दुख दाता एक का अन्य जीव है कोए।"
कर्म - बंध में हेतु यह उल्टी दृष्टी होए ॥
"मारूँ और जिलाउँ मैं, देता भोजन - पान।"
अज्ञानी यह सोचता, करता आत्म बखान ॥८-१७०॥

अज्ञानी स्वयं को किसी अन्य का सुख-दुख दाता मानता है :—

व्यर्थ विमोहित हो रहा मिथ्यादृष्टि अजान।
सुख - दुख दाता अन्य का अपने को ही मान ॥९-१७१॥

अज्ञानी पर्याय में लिप्त रहता है :—

अज्ञानी ही सोंचता—'मैं करता सब काम'।
वही यतीश्वर जगत में नहिं ऐसे परिणाम ॥
मिथ्यादृष्टी जीव ही लिप्त रहें पर्याय।
भेद - ज्ञान ज्ञानी धरें स्वानुभूति रस पाय ॥१०-१७२॥

ज्ञानी जीव आत्म स्वरूप में स्थिर रहते है :—

सम्यग्दृष्टी जीव सब थिर रहते चिद्रूप।
दर्श - ज्ञान - सुख - वीर्य युत ध्याते आत्म स्वरूप ॥
"मैं कर्ता" सम त्याग कर सभी हेय परिणाम।
निर्विकल्प, निश्कम्प रह ध्याते आतम राम ॥
अन्याश्रित गिरता सदा, गिरते ही आधार।
अहं भाव जाते घुटे सब विकल्प, व्यवहार ॥११-१७३॥

शंका—मोह आदि का कर्ता जीव है या पुद्गल :—

कर्म - बंध कारण कहे राग - द्वेष - मोहादि ।
विलग चेतना भाव से रहते भिन्न अनादि ॥
मोहादिक कर्ता कहो प्रभुजी अब समझाए ।
पुदगल है, या जीव है सो स्पष्ट बताए ॥१२-१७४॥

उक्त शंका का समाधान :—

उपादान कारण प्रथम अरु निमित्त है दोय ।
कोई भी पर्याय में दोनों कारण होय ॥
राग - द्वेष - मोहादि भी सभी विभावहिं मान ।
उपादान परिणमन - बल जीव द्रव्य में जान ॥
जैसे उज्ज्वल धवल द्युति सूर्य - कांत मणि होए ।
रंग - रंग की भासती डाँक निमित्तहिं सोए ॥
जीव द्रव्य भी उसी सम पुदगल पाए निमित्त ।
राग - द्वेष युत भासता मदिरालस हो चित्त ॥
यों स्वभाव से जीव है सहज भेद - विज्ञान ।
दर्श - ज्ञान - सुख - वीर्य की अनुपम, अक्षय खान ॥१३-१७५॥

ज्ञानी वस्तु स्वभाव को भली प्रकार जानता है :—

राग—द्वेष—मोहादि नहिं आत्म स्वरूप विचार ।
ज्ञानी वस्तु स्वभाव को जाने भली प्रकार ॥
रागादिक परिणाम का सो कर्ता नहिं होए ।
सब विभाव परिणाम तज निज में रमता जोए ॥१४-१७६॥

अज्ञानी स्वयं को ही राग-द्वेष का कर्ता मानता है :—

अज्ञानी निज रूप नहिं जाने उक्त प्रकार ।
"रागादिक मैं ही करूँ" ऐसा करे विचार ॥
'ये विभाव परिणाम हैं' नहीं समझता सोए ।
स्वामिपने की भावना वश सो कर्ता होए ॥१५-१७७॥

ज्ञानी कर्म-वंध को काट कर मुक्त होता है :—

वस्तु स्वरूपहि चितवे ज्ञानी उक्त प्रकार।
प्राप्त करे निज रूप को छुटे सभी संसार ।।
राग - द्वेष - मोहादि की कर परम्परा दूर।
भेद - ज्ञान से चाखता अनुभव रस भरपूर ।।
शक्ति - पुंज, निज रस भरा उपजे सम्यग्ज्ञान।
कर्म - बंध को काट कर स्वयं होए भगवान ।।१६-१७८।।

इस प्रकार कर्म-वंध का नाश कर आत्म-ज्योति प्रगट हुई :—

ज्ञान - ज्योति प्रगटित हुई कर आलोक प्रसार।
सकल ज्ञेय प्रत्यक्षवत प्रगटा जाननहार ।।
अन्य द्रव्य से ना रुके उपजी शक्ति अनन्त।
कर्म तिमिर का कर दिया दयाहीन बन अंत ।।
मिटते ही रागादि के विविध बंध विनसाए।
जैसा आत्म स्वरूप है सो अनुभव में आए ।।१७-१७९।।

सारांश :—कार्माण–वर्गणा रूप पुदगल परमाणुओं का आत्मा से संलग्न हो जाना ही वंध है। इस अधिकार में वताया गया है कि वंध में अज्ञान और प्रमाद ही मुख्य कारण हैं। १६४ वें काव्य में इसी वात की पुष्टि की है कि सव क्रियाएं करते हुए भी सम्यग्दृष्टी के कर्म वंध नहीं होता। १६६ वें काव्य में कहा है कि प्रमाद से क्रियाएं करने पर कर्म-वंध अवश्य होता है। १६८ वें काव्य में वताया है कि सब जीव अपने-अपने कर्मोदय के अनुसार ही सुख-दुख पाते है, कोई भी किसी दूसरे को सुख-दुख देने में समर्थ नहीं है। १६९ से १७२ तक काव्यों में कहा है कि जो अपने को कर्ता मानता है वह सदैव कष्ट पाता है। १७४ वें काव्य मे शका की है कि राग-द्वेष-मोहादि का कर्ता पुदगल है या जीव ? १७५ वें काव्य में इस शंका का समाधान है कि दोनो का संयोग ही इसका वास्तविक कारण है। एक निमित्त है दूसरा उपादान। १७८ वें काव्य में वताया है कि ज्ञानी ही कर्म वंध को काट कर मुक्त होता है।

अष्टम वंध अधिकार समाप्त

(९)
मोक्ष अधिकार

भेद विज्ञान के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति :—

दुख दोषों का हेतु जो छुटा बंध विस्तार।
पूर्ण ज्ञान युत मोक्ष का होए अनन्त प्रसार ॥
दो भागों में बाँट कर आरे के सम जान।
आत्म, कर्म की भिन्नता करे भेद - विज्ञान ॥
द्रव्य - भाव - नो कर्म का होता पूर्ण अभाव।
वही अतीन्द्रिय सुख परम रहता एक स्वभाव ॥
सकल कर्म कृत - कृत्य हो रहा न कुछ भी शेष।
छिपा सहज प्रगटित हुआ परमानन्द अशेष ॥१-१८०॥

प्रज्ञा रूपी छेनी से भेद ज्ञान की प्रेरणा देते हैं :—

जीव, कर्म बंधन बँधा है अनादि से जान।
प्रज्ञा - छेनी संधि से अलग करे श्रीमान ॥
जीव - कर्म को कर जुदा करे आत्म - रस लीन।
'सब रागादि विभाव हैं' अनुभव करे प्रवीन ॥
ज्ञानी के इक समय में होती क्रिया अनूप।
केवल दर्शन - ज्ञान युत प्रगटे शुद्ध स्वरूप ॥२-१८१॥

ज्ञानी जीव क्या अनुभव करते हैं :—

"मैं निश्चय चैतन्य हूँ" चेतन गुण साकार।
कर्म उपाधि अनादि की छूटी सभी प्रकार ॥
चेतन लक्षण जीव का कर्म अचेतन होए।
सहज भेद सो भासता सम्यग्दृष्टी लोए ॥
आप आपको आपमें, अपने द्वारा ध्याय।
दर्श - ज्ञान - सुख भेद हों या द्रव्यहि, पर्याय ॥
वचन भेद सो गुण सभी होते हैं व्यवहार।
निर्विकल्प चैतन्य है चेतन मात्र विचार ॥४-१८२॥

आत्मा के चेतना लक्षण का स्वरूप :—

एक चेतना नाम दो दर्शन, ज्ञान विचार।
दर्शन गुण आकार बिन, ज्ञान गुर्णाहिं साकार॥
सो विकल्प चैतन्त के हैं सामान्य, विशेष।
तिन त्यागे त्रय भ्रम बढ़ें चेतन होए निशेष॥
लक्षण, सत्ता, मूल का कर्महिं नाश चितधार।
जीव द्रव्य की सिद्धि में है चेतन आधार॥४-१८३॥

चेतना ही एक मात्र जीव का स्वभाव है :—

मात्र 'चेतना' जीव का निश्चय, नियत स्वभाव।
द्रव्य—भाव—नो कर्म सब पुदगल ही के भाव॥
शुद्ध चेतना मात्र ही जीव स्वरूप विचार।
हेय सर्वथा भाव 'पर', अन्य सभी चितधार॥५-१८४॥

मोक्षार्थी का आत्म चिंतवन :—

मोक्षार्थी अनुभव करें जैसा वस्तु स्वरूप।
हे भव्यों ! अनुभव करो वैसा ही निज रूप॥
मन भोगों से हो रहित, ज्ञान ज्योति आगार।
स्वानुभूति रस लीन ही मोक्षार्थी चितधार॥
शुद्ध चेतना से विलग हैं रागादिक भाव।
सुख—दुख नाना भाँति के मेरे नहीं स्वभाव॥
ऐसा करें विचार, हो मन आकुलता हीन।
सर्व काल ही सो रहें निजानंद रसलीन॥६-१८५॥

पर में आत्म-बुद्धि के अपराध से अज्ञानी कर्मों द्वारा बांधा जाता है :—

स्वानुभूति से भ्रष्ट ही कर्महि बाँधा जाए।
शरीरादि में जीव जो आतम बुद्धि बनाए॥
कर्मोदय वश भाव सब मेरे नहीं स्वभाव।
सम्यग्दृष्टि अबंध है रमण करे निज भाव॥७-१८६॥

उक्त कथन की पुनः पुष्टि में उदाहरण :—

पर धन निज अनुभव करे सो अज्ञानी होए।
निज धन ही अपना कहे, कहिए ज्ञानी सोए॥
पर द्रव्यों का चोर ही रहता कारागार।
करता वस्तु प्रयोग निज सो ही साहूकार॥
पर पुद्गल कर्मादि को समझ रहा निज रूप।
उस अज्ञानी जीव को बाँधें कर्म विरूप॥
पर भावों को निज समझ रहे कर्म के बंध।
शुद्ध वस्तु का अनुभवी ज्ञानी रहे अबंध॥८-१८७॥

प्रमादी तथा अज्ञानी जीव मोक्ष मार्गी नहीं हैं :—

अतः प्रमादी है नहीं मोक्ष मार्ग में मान।
पूर्व कर्म वश भोग-सुख रमे सत्य सुख जान॥
आकुलता उनसे बढ़े अतः हेय हैं सोए।
ज्ञान बिना भोगहिं रमा आतम-हंता होए॥
निज स्वरूप में मन बँधे, निखरे केवल ज्ञान।
पूर्ण अनाकुल मोक्ष सुख ही उपलब्धि महान॥९-१८८॥

स्वानुभवी के लिए प्रतिक्रमणादि भी विकल्प ही हैं :—

ज्यों-ज्यों करे प्रमाद जन त्यों-त्यों गिरता जाए।
फिर भी करे विकल्प क्यों ? 'क्यों नहिं ऊपर जाए'॥
प्रतिक्रमणादि विकल्प भी होते विष सम जान।
निर्विकल्प अनुभव सहज जब उपजे सुखखान॥१०-१८९॥

ज्ञानी जीव के कर्म-बँध कटने का कारण :—

शिथिल, प्रमादी जीव के शुद्ध भाव नहिं होए।
रागादिक की तीव्रता ही है कारण सोए॥
सम्यग्दृष्टी जीव का होए शुद्ध उपयोग।
तत्क्षण ही कटता सभी कर्म-बंध का भोग॥

शुद्ध स्वभावहिं मग्न हो रहे विभावहिं दूर।
निजानंद रसलीनता, चेतन गुण भरपूर ॥११-१९०॥

सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीवों की पहिचान :—

कर्म - बंध क्षय कर सभी, निर्विकल्प सुख-खान।
निज चैतन्य प्रवाह में तन्मय महिमावान ॥

रमे अतीन्द्रिय सहज सुख, मुदित रहें सब काल।
मोहादिक अपराध सब दूर होएँ तत्काल ॥

कर्म - बंध का नाश कर, पर ममत्व को छोड़।
ध्याते निज में निजहिं को निज से नाता जोड़ ॥१२-१९१॥

मोक्ष की महिमा तथा स्वरूप का वर्णन :—

पूर्ण ज्ञान प्रगटित हुआ कर्म कलंक नसाए।
अक्षय, अतुल अनन्त सुख जीव मोक्ष पद पाए ॥

अष्ट कर्म के नाश से प्रगटा केवल ज्ञान।
सहज अवस्था से हुआ शाश्वत महिमावान ॥

शुद्ध अवस्था सर्वथा धीर, गहन, गंभीर।
एक रूप, निज–रस भरित, हो कृत - कृत्य सुवीर ॥
निज निष्कम्प प्रताप में, मगन रहे निज रूप।
आतम आतम में रमे सो ही मोक्ष अनूप ॥१३-१९२॥

सारांश :—इस मोक्ष अधिकार में प्रथम तो प्रज्ञा–छेनी से आत्मा और बंध को अलग-अलग कर के स्वानुभूति में रमण का उपदेश है। उपरांत १८२ वें काव्य में ज्ञानी जीव की चिंतन प्रक्रिया बताई है। १८३ तथा १८४ काव्य में चेतना को ही एक मात्र आत्मा का लक्षण कहा है। १८६ व १८७ काव्य में चोर एवं साहूकार के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि पर द्रव्य में आत्म-बुद्धि रखने के अपराध के कारण ही जीव कर्मों के द्वारा बांधा जाता है। अंतिम १९२ वें काव्य में मोक्ष की महिमा तथा स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि आत्मा के आत्मा में रमण से उत्पन्न रसलीनता ही मोक्ष है।

नवम मोक्ष अधिकार समाप्त
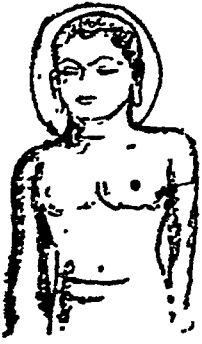
(१०)
सर्व-विशुद्ध-ज्ञान अधिकार

शुद्ध जीव के स्वरूप तथा महिमा का वर्णन :—

जीवहिं शुद्ध स्वरूप अब भविजन लीजे जान।
स्वानुभूति से जो सहज शाश्वत महिमावान॥
पंचेन्द्रिय के भेद नहिं, करे न भोगे कर्म।
निजानंद रसलीनता ही है सम्यक मर्म॥
ज्ञानपुंज, निश्चल, स्वरस भरित, प्रकाश स्वरूप।
बंधन - मुक्ति विकल्प नहिं, अति विशुद्ध सो रूप॥१-१६३॥

शुद्धात्मा न कर्ता है न भोक्ता :—

वास्तव में रागादि का भी नहिं कर्ता सोए।
सो विभाव परिणाम भी आत्म - बुद्धि वश होए॥
नहिं कर्ता, नहिं भोक्ता ये नहिं जीव स्वभाव।
जब विभाव परिणति मिटे, रमे एक निज भाव॥२-१६४॥

राग-द्वेष-मोहादि विभाव हैं, जीव स्वभाव नहीं :—

निश्चय से तो जीव है यद्यपि शुद्ध स्वरूप।
राग - द्वेष - मोहादि जग करे विभावहिं रूप॥
प्रतिबिम्बित त्रय काल ही षट - द्रव्यहिं - पर्याय।
मिटते ही मिथ्यात्व के सहज रूप झलकाए॥३-१६५॥

अनादि कर्म-बंध से ही जीव कर्ता-भोक्ता प्रतीत होता है :—

"भोक्ता जीव स्वभाव से" गणधर कहा न सोए।
ज्यों कर्ता नहिं जीव है, ज्यों भोक्ता नहिं होए॥
दर्श - ज्ञान - सुख - वीर्य हैं जैसे जीव स्वरूप।
कर्ता—भोक्ता—पन नहीं वैसे जीवहिं रूप॥
कर्म अनादहिं बंध वश ही भोक्ता कहलाए।
सो अशुद्ध परिणति मिटे जब मिथ्यात्व नसाए॥४-१६६॥

अज्ञानी के भोक्ता तथा ज्ञानी के अभोक्ता होने का कारण :—

सम्यग्दृष्टी जीव को त्याज्य सदा अज्ञान।
शुद्ध, एक, चिद्रूप मय, करे आत्म - रस पान ॥
कर्म - प्रकृति - फल, जगत में अज्ञानी अनुरक्त।
निश्चय ही ज्ञानी रहे उनसे सदा विरक्त ॥
राग भाव वश भोक्ता यों अज्ञानी होए।
नहीं भोक्ता, जग विरत सम्यग्ज्ञानी सोए ॥५-१९७॥

अकर्ता-अभोक्ता ज्ञानी जीव का आत्म चिंतवन :—

कर्ता नहिं रागादि का, नहीं भोक्ता होए।
सुख - दुख वेदन बिन रहे निश्चय ज्ञानी सोए ॥
कर्म उदय सुख - दुख सकल, मेरा नहीं स्वरूप।
सम्यग्दृष्टी जान कर मगन रहे निज रूप ॥
निर्विकार हैं सिद्ध सम, पर के जाननहार।
कर्ता - भोक्ता पन मिटा ज्ञानी के चितधार ॥६-१९८॥

आत्मा को कर्मों का कर्ता मानना मोक्ष - मार्ग में बाधक है :—

जिन - मत - पालक, बहु पठित, करें व्रतादि महान।
अज्ञानी फिर भी नहीं मोक्ष - मार्ग में जान ॥
'कर्तापन' जो मानता होता जीव स्वभाव।
मिथ्यात्वी सो अंध को होए न जगत अभाव ॥७-१९९॥

चेतन कर्म का तथा पुदगल चेतन भाव का कर्ता नहीं है :—

चेतन पुदगल कर्म का कर्ता कैसे होए।
पुदगल चेतन भाव का भी नहिं कर्ता सोए ॥
भिन्न द्रव्य सम्बन्ध में एक न होए स्वरूप।
एक क्षेत्र अवगाह हों तदपि न तन्मय रूप ॥८-२००॥

आत्मा का पर द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है :—

जड़, चेतन की अलग हैं द्रव्यहिं, गुण, पर्याय।
वस्तु समान मिलें सदा अन्य नहीं मिल पाए ॥

वस्तु भेद से इसलिए जीव न कर्ता होए।
ज्ञानी की अनुभूति में जीव अकर्ता सोए॥
दर्श - ज्ञान - सुख - वीर्य हैं जीवहिं के गुण जान।
पुदगल के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं मान॥
नर, नारक, तिर्यंच सब होएँ जीव पर्याय।
पत्थर, लकड़ी आदि हैं पुदगल की पर्याय॥
जीव अबंध, अखंड है, स्निग्ध - रूक्ष जड़ जान।
मिलें, विलग परमाणु हों पुदगल ही के मान॥९-२०१॥

अज्ञानी अशुभ भावों के कारण भाव कर्म का कर्ता है :—

आच्छादित मित्थ्यात्व से है चैतन्य प्रकाश।
सो अज्ञानी को रहा जीवहिं कर्ता भास॥
है अशुद्ध परिणाम वश भावहिं कर्ता सोए।
कर्ता पुदगल कर्म का वह कदापि नहिं होए॥१०-२०२॥

संसारी जीव अपने भाव-कर्मो का कर्ता-भोक्ता है :—

क्रिया करे सो भोक्ता अन्य न भोगे कोए।
जो कर्ता सो भोक्ता निश्चय जानो सोए॥
चेतन पुदगल मिल करें रागादिक नहिं जान।
संसारी जीवहिं सदा भावहिं कर्ता मान॥
भाव कर्म उत्पत्ति भी अपने आप न होए।
यह संसारी जीव ही होता कर्ता सोए॥
रागादिक जीवहिं करे अन्य न कर्ता जान।
सुख - दुख, योग - वियोग सो कर्ता - भोक्ता मान॥११-२०३॥

स्याद्वाद से जीव के कर्तृत्व की वास्तविकता :—

जीवहिं द्रव्य स्वभाव की मर्यादा लें जान।
'करे कार्य, नहिं भी करे' स्याद्वाद नय मान॥
"किसी युक्ति से आत्मा भावहिं कर्ता होए"।
मिथ्यादृष्टी जीव बहु क्रोध करें सुन सोए॥

मोहाच्छादन वश हुए भूल गए निज रूप।
सो अज्ञानी बोध हित कहते जीव स्वरूप ॥१२-२०४॥

सांख्य मत के समान जीव को सर्वथा अकर्ता समझना भी एकांत है :—

"जीव अकर्ता सर्वथा" यह एकांत विचार।
सांख्यमती सम जैनियों करो न अंगीकार ॥
मोहादिक आच्छन्न है तब तक कर्ता मान।
मोहादिक छुटते वही जीव अकर्ता जान ॥
निश्चय जैसे ज्ञान-गुण शाश्वत जीव स्व-भाव।
वैसे रागादिक नहीं जीवहिं के निज भाव ॥
उन विभाव परिणमन में जीवहिं कर्ता होए।
मिटते ही रागादि के जीव अकर्ता सोए ॥
होते ही सम्यक्त्व के फैले ज्ञान-प्रताप।
ज्ञाता-दृष्टा, अचल गुण प्रगटे अपने आप ॥१३-२०५॥

बौद्ध धर्म का क्षणिकवाद भी एकांत है :—

कर्ता-भोक्ता को जुदा बौद्ध धर्म बतलाए।
जीव द्रव्य माने क्षणिक सो भ्रम में पड़ जाए ॥
नया उपजता प्रति समय, पूर्व नाश हो जान।
करे अन्य, फल अन्य ले, भ्रमित रहा है मान ॥
दिखी वस्तु जो बालपन, दिखे युवापन जोए।
'वही वस्तु देखी हुई' ज्ञान अतीतहिं होए ॥
पूर्व वस्तु का ज्ञान में किसको भासा रूप?
अतः स्वयं स्पष्ट है शाश्वत जीव स्वरूप ॥
अमृत अविनश्वर-पने से अभिसिंचित होए।
जीव सर्वदा एक है निश्चय भिन्न न कोए ॥१४-२०६॥

उक्त बौद्ध मत के क्षणिकवाद का युक्ति द्वारा निराकरण :—

'एक विनश, उपजे नई' वृत्ति सोइ चितधार।
मूल वस्तु ही नाश हो, सो कल्पित अविचार ॥

द्रव्य रूप से जो करे निश्चय सो फल पाए।
यद्यपि इक पर्याय फल मिलें अन्य पर्याय ॥
भेद द्रव्य - पर्याय बिन कहना है एकांत।
कर्ता - भोक्ता भिन्न हैं सो मिथ्यात्व नितांत ॥१५-२०७॥

बौद्ध, मीमांसक तथा सांख्य मतों के एकांत कथनों का निराकरण :—

मान क्षणिक चैतन्य को, "विनसे जीव समूल"।
बौद्धमती सो कह रहे द्रव्य स्वभावहि भूल ॥
जीव - कर्म संयोग जो, है अनादि चितलाए।
'जीव अशुद्धहि सर्वथा' मीमांसक बतलाए ॥
सांख्यमती हठ से कहे—'जीव सर्वथा शुद्ध'।
स्याद्वाद बिन तदपि हैं सो सब कथन अशुद्ध ॥
बन सकता धागे बिना जैसे कभी न हार।
स्याद्वाद - नय - सूत्र बिन तैसे भिन्न विचार ॥१६-२०८॥

विकल्पों को त्याग, निर्विकल्प आत्मानुभूति ही उपादेय है :—

कर्ता - भोक्ता भेद जो पर्यायार्थिक होए।
द्रव्यार्थिक नय जीव में नहीं भेद है कोए ॥
वही करे, भोगे वही अथवा भोगे अन्य।
ऐसे सभी विकल्प हैं युक्ति, कल्पना जन्य ॥
उपादेय है अनुभवन चित - चिन्तामणि - माल।
निर्विकल्प निज रूप की हो अनुभूति त्रिकाल ॥१७-२०९॥

कर्ता-कर्म में व्यवहार और निश्चय दृष्टि :—

कर्महि पुदगल पिंड का कर्ता है व्यवहार।
कर्ता कर्महि भिन्नता भासे विविध प्रकार ॥
निश्चय व्यापक - व्याप्यपन भिन्न द्रव्य नहिं होए।
कर्ता निज परिणाम के चेतन, पुदगल सोए ॥१८-२१०॥

जीव पर्याय के अनुसार अपने परिणामों का कर्ता है :—

कर्ता परिणामी कहा, कर्म कहा परिणाम।
कर्ता निज परिणाम ही अन्यहि का नहिं काम ॥

कर्ता बिन नहिं कर्म हो, नहीं वस्तु थिर रूप।
कर्ता निज परिणाम का पर्ययहिं अनुरूप ॥१९-२११॥

वैशेषिक मत के एकांगी स्वरूप का निराकरण :—

वैशेषिक मिथ्यामती भ्रमवश करें विचार।
होता जीव अशुद्ध है होकर ज्ञेयाकार ॥
सकल ज्ञेय को जानना सहजहिं जीव स्वभाव।
ज्ञेय रूप तो भी नहीं हो, निश्चय चित लाव ॥
चेतन जड़ होता नहीं, नहिं जड़ चेतन मान।
मुक्त जीव ज्ञायक तदपि, नहिं अशुद्ध है जान ॥
जड़, चेतन के नियत हैं अपने स्वयं स्वरूप।
दर्पणवत हो झलकते चेतन में जड़ रूप ॥२०-२१२॥

एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप नहीं होता :—

कौन द्रव्य ऐसा कहो मिल होवे उस रूप।
आपस में नहिं मिल सकें निश्चय रहें स्व-रूप ॥२१-२१३॥

'एक वस्तु अन्य का कुछ करती है' यह व्यवहार से है, निश्चय से नहीं :-

"एक अन्य का कुछ करे" कथन सोई व्यवहार।
स्वयं परिणमन कर रहे सभी द्रव्य चितधार ॥२२-२१४॥

आत्मा सकल ज्ञेय पदार्थों का ज्ञाता होने से अशुद्ध नहीं है :—

"ज्ञेय वस्तु के ज्ञान से चेतन होए अशुद्ध"।
सो विचार मिथ्यात्व है, है सिद्धांत विरुद्ध ॥
ज्ञेय वस्तु का जीव है यद्यपि जाननहार।
पर इससे होता नहीं किंचित मात्र विकार ॥
सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि कभी न होए अभिन्न।
निश्चय वस्तु स्वभाव सो—पर से रहता भिन्न ॥
गुण-लक्षण से जानता ज्ञेयहिं - ज्ञायक भेद।
सम्यग्दृष्टी के नहीं ताते उपजे खेद ॥२३-२१५॥

ज्ञान ज्ञेय को जानता है पर उस रूप नहीं होता इस पर दृष्टांत :—

ज्ञान सदा ही जानता वस्तु स्व - पर जो ज्ञेय।
द्रव्यहिं - गुण - पर्याय सब उपादेय अरु हेय॥
ज्ञेय - ज्ञान संबंध पर, ज्ञान रूप नहिं कोए।
चन्द्र - किरण के पड़े भू चन्द्र - किरण नहिं होए॥
ज्यों चंद्रिका प्रसार से पृथ्वी श्वेत लखाए।
रहे चाँदनी ही तदपि पृथ्वी नहिं हो जाए॥
अलग - अलग सब द्रव्य के होएँ स्वभाव - स्वरूप।
कोई 'पर' होता नहीं कभी त्याग निज रूप॥२४-२१६॥

ज्ञान में राग-द्वेष का उदय कब तक रहता है :—

राग द्वेष परिणाम दो, तब तक जीवहिं जान।
अपने शुद्ध स्वरूप का, जब तक होए न भान॥
सभी कर्म - रागदि में, ज्ञेय बुद्धि रह जाए।
'ये आत्मन से पृथक हैं'—यह स्पष्ट दिखाए॥
मिथ्या परिणति दूर हो, प्रगटे केवल ज्ञान।
दर्श - ज्ञान - सुख - वीर्य से शाश्वत महिमावान॥
जीव मुक्त होता सहज, पूर्ण सिद्ध पद पाए।
हों समाप्त जन्मन - मरण, सब संसार नसाए॥२५-२१७॥

परमात्म पद की प्राप्ति का मार्ग बताते हैं :—

जैसे जीवहि द्रव्य है, राग - द्वेष नहिं जान।
सो अनादि संयोग से जीव विभावहिं मान॥
राग - द्वेष को मेट कर, अनुभव करो स्वरूप।
ज्ञान ज्योति सहजहिं दिपे, पूर्ण, अचल निज रूप॥२६-२१८॥

राग-द्वेष का कारण अज्ञान है, बाह्य पदार्थ नहीं :—

अष्ट कर्म, नो कर्म, धन, बाह्य भोग, परिवार।
राग - द्वेष के हेतु ये किंचित नहीं विचार॥
राग - द्वेष परिणाम हैं—चेतन रूप अशुद्ध।
'एक अन्य का कुछ करे'—द्रव्य स्वरूप विरुद्ध॥

द्रव्य छहों रहते सदा अपने - अपने रूप।
निश्चय से स्पष्ट है सो ही द्रव्य स्वरूप॥
अतः निजाश्रित परिणमन छहों द्रव्य के जान।
राग - द्वेष का मूल है महा - मोह - मद - पान॥२७-२१९॥

आत्मा के राग-द्वेष परिणमन में पुदगल का दोष नहीं है :—

राग - द्वेष परिणमन में पुद्गल दोष न कोए।
भ्रष्ट जीव स्व - स्वरूप से ही अपराधी होए॥
पर द्रव्यहिं निज अनुभवे मिथ्यादृष्टि अजान।
कर्म, पुदगलहिं दोष क्या ? सो अनुभूति महान॥
राग - द्वेष परणति मलिन होए समूल विनाश।
जीवहिं शुद्ध स्वरूप का फैले विमल प्रकाश॥२८-२२०॥

मोहादि पुदगल के वश मानना मिथ्यात्व है :—

मोह सैन्य के दलन में अज्ञानी असमर्थ।
शुद्ध जीव के बोध में कभी न होए समर्थ॥
"राग - द्वेष - मोहादि सब पुदगल के वश होए।"
सो विचार मिथ्यात्व है निश्चय जानो सोए॥२९-२२१॥

ज्ञायक होने पर भी जीव अविकारी है, दीपक की उपमा :—

अज्ञानी क्यों मग्न है राग - द्वेष - मोहादि।
"भिन्न सहज पर द्रव्य से" छुटी प्रतीति अनादि॥
अनुभव शुद्ध स्वरूप का जीवहिं तिन नहिं कोए।
सकल ज्ञेय - ज्ञायक तदपि निर्मल चेतन होए॥
एक, अखंड, स्वरूप से अच्युत, बोध महान।
द्रव्य - भाव - नो कर्म बिन शुद्ध जीव है जान॥
इधर - उधर, चहुं ओर ही, सकल वस्तु, व्यापार।
करे प्रकाशित दीप पर, स्वयं रहे अविकार॥
त्यों ही शुद्ध स्वरूप में ज्ञान ज्ञेय का होए।
उपजे ज्ञायक पने से जीव विकार न कोए॥३०-२२२॥

शुद्ध ज्ञान, और चारित्र सम्यग्दृष्टी के लिए एक ही हैं :—

निज स्वरूप को अनुभवे, आस्वादे चित - ज्ञान।
आत्म - स्व - रस से सींचते मानो जगत महान॥
निर्मल, दृढ़ चारित्र के बल से हुआ विकास।
सकल ज्ञेय - ज्ञायक मयी सो चैतन्य प्रकाश॥
शुद्ध ज्ञान, चारित्र हैं एक वस्तु नहिं दोए।
राग - द्वेष से मुक्त जो सम्यग्दृष्टी होए॥
पूर्व, भविष्यहिं कर्म सब सो जड़ - मूल नसाए।
उदय भोग में विरत नित ज्ञानी वही कहाए।३१-२२३॥

ज्ञान चेतना मोक्ष तथा अज्ञान संसार का कारण है :—

अविरल चेतन बोध से, प्रगटे केवल ज्ञान।
राग - द्वेष, सुख - दुख किए, बँधें कर्म नित जान॥
कर्म–बंध–कारण रुके आत्म - बोध चितधार।
ज्ञान चेतना मोक्ष है, अज्ञानहि संसार॥३२-२२४॥

ज्ञानी द्वारा अपनी आलोचना तथा आत्म चिंतवन :—

किये, कराये, पाप सब, अरु अनुमोदे जोए।
मन–वच–काया से हुए जीव स्वरूप न कोए॥
द्रव्य–भाव–नो कर्म जो बँधे त्रिकालहिं जान।
निश्चय उनसे भिन्न मैं चेतन द्रव्य महान॥३३-२२५॥

स्वानुभवी ज्ञानी की विचार धारा :—

करता, करवाता नहीं, ना अनुमोदूं आप।
मन–वच–काया से हुए मोह जनित जो पाप॥
ज्ञान–भानु के उदय से उपजा सहज विचार।
त्यागे सभी विकल्प अब मिटा मोह संसार॥
कर्म रहित, निर्मल, सहज, वस्तु विशुद्ध अनूप।
निश्चय अपने आप मैं अविरल ज्ञान–स्वरूप॥३४-२२६॥

ज्ञानी का आत्मालोचन तथा अक्रिया की स्थिति :—

रमता अपने आप में बिन पर द्रव्य सहाए।
'कर्म-जाल सब मोह वश', यह स्पष्ट दिखाए॥
शुद्ध चेतना मात्र हूँ, क्रियाहीन, अविकार।
मन - वच - काया से नहीं कर्ता किसी प्रकार॥
करूँ, कराऊँगा नहीं, नहिं अनुमोदूं कोय।
रहूं अक्रिया सर्वदा, शुद्ध स्वरूपहिं सोय॥३५-२२७॥

ज्ञानी द्वारा कर्मों का प्रत्याख्यान :—

मोह रहित हो ज्ञान-बल, रमता शुद्ध स्वरूप।
आगामी जितने सभी त्यागे कर्म विरूप॥३६-२२८॥

स्वानुभूति-रस-लीन ज्ञानी की भावना :—

मिटते ही मिथ्यात्व के मोह गया जड़-मूल।
निजानंद रसलीन हूं सभी विकारहिं भूल॥
कर्म सभी मुझसे विलग हैं पूर्वोक्त प्रकार।
अवलम्बन मैं आप का तीन काल अविकार॥३७-२२९॥

ज्ञानी कर्म-फल से विरत है :—

कर्म - वृक्ष - फल विष सदृश, विनसे सभी विरूप।
आस्वादूं चिद्रूप को जो है ज्ञान स्वरूप॥३८-२३०॥

सभी सुख-दुख कर्म जनित हैं :—

"कर्म-जन्य सुख-दुख सभी" निश्चय जानें संत।
कर्म रहित चित-ज्ञान में बीते काल अनन्त॥३९-२३१॥

कर्म-फल में विरक्ति की महिमा :—

ज्ञानी अपना कर्म-फल भोगे रुचहिं अभाव।
रहे तृप्त रस - स्वात्म में, रखकर ज्ञायक भाव॥
सहज अतीन्द्रिय सुख मिले, पावे मोक्ष महान।
कर्म रहित, निर्वाण पद जो अनन्त सुख-खान॥४०-२३२॥

ज्ञानी की समता से पूर्ण मनोदशा का वर्णन :—

राग - द्वेष में सम रहें, सर्व विकल्पहिं त्याग।
इष्ट - अनिष्टहिं योग में उपजा परम विराग॥
पियें अतीन्द्रिय सुख स्व - रस हुई कषायें मंद।
शुद्ध ज्ञान परिणति सदा आस्वादें सानन्द॥
कर्म और कर्मज—फलहिं—'सुख—दुख' सहें उदास।
निजानुभव ज्ञानी मगन केवल ज्ञान प्रकाश॥४१-२३३॥

इस प्रकार शुद्ध निराकुल ज्ञान प्रगट हुआ :—

रस—स्पर्श, रूपादि हैं सब पुदगल विस्तार।
पर द्रव्यों से भिन्न हूं मैं चेतन अविकार॥
मिटते ही अज्ञान—तम हुए सभी भ्रम नाश।
एक, अनाकुल, भेद बिन, फैला ज्ञान प्रकाश॥४२-२३४॥

ज्ञान मध्य, आदि और अंत के विभाग से रहित है :—

पर के ग्रहण, स्वरूप के त्याग, रहित हो ज्ञान।
शुद्ध ज्ञान प्रगटित हुआ शाश्वत महिमावान॥
पर द्रव्यों से भिन्न हो कर्महि हुआ अभाव।
मध्य, आदि अरु अंत के दूर हुए सब भाव॥
ज्ञान अनन्तहिं शक्ति से निखरा अमल अनूप।
सहज प्रकाशित आत्मा चेतन—पुंज स्वरूप॥४३-२३५॥

ज्ञान स्वरूप आत्मा को कुछ भी त्याग शेष नहीं रहता :—

हेय रूप सब ही छुटा, त्याग रहा नहिं शेष।
आप स्वयं निज रूप में स्थिर हुआ अशेष॥
उपादेय सब मिल गया, छुटे विभाव विरूप।
सहज स्वरूप, अनन्त गुण, निखरा पूर्ण स्वरूप॥४४-२३६॥

शुद्ध ज्ञान देह, भेष की शंकाओं से परे है :—

देह, भेष की व्यर्थ हैं सब शंका चितधार।
ज्ञान पृथक पर द्रव्य से है पूर्वोक्त प्रकार॥४५-२३७॥

मोक्षार्थी को निम्न ३ काव्यों में मोक्ष-मार्ग का उपदेश :—

द्रव्य लिंग सो जीव की मुक्ति हेतु नहिं जान।
बिन शरीर ही जीव है निर्मल केवल ज्ञान ॥४६-२३८॥

मोक्षार्थी हित योग्य हैं अनुभव शुद्ध स्वरूप।
दर्श–ज्ञान–चारित्र मय चेतन अमल, अनूप ॥४७-२३९॥

सम्यग्दृष्टी नित्य ही आस्वादे चितधार।
सकल कर्म–मल से रहित समयसार अविकार ॥

शुद्ध चेतना मात्र का थिर हो करता ध्यान।
अनुभव कर चिद्रूप का पाता मोक्ष महान ॥

छोड़ सभी पर द्रव्य को होए स्वयं चिद्रूप।
दर्शन - ज्ञान - चरित्र ही है सर्वस्व स्वरूप ॥

आत्म–अनुभवन–रस पिओ, गुण पर्याय विहीन।
निर्विकल्प इक रूप में रहो निरंतर लीन ॥४८-२४०॥

अज्ञानी की बाह्य क्रियाओं की व्यर्थता का ३ काव्यों में वर्णन :—

एक अखंड, प्रकाशयुत, अतुलनीय, अविकार।
चेतन का अनुभव नहीं जिनको भली प्रकार ॥

यद्यपि पालें सब क्रिया मुनि, श्रावक अज्ञान।
मोक्ष - मार्ग में स्वयं को झूठ रहे हैं जान ॥

स्वानुभूति - रस - मग्न ही ज्ञानी मोक्ष समर्थ।
तत्व - बोध, अनुभव बिना बाह्य क्रिया सब व्यर्थ ॥४९-२४१॥

अज्ञानी नहिं अनुभवें—'मोक्ष मार्ग है ज्ञान।'
द्रव्य क्रिया, व्यवहार में भ्रमित रहें अंजान ॥

चावल को तो छोड़ दें समझ वस्तु बेकार।
मूढ़मती भ्रमवश करे ज्यों तुष अंगीकार ॥५०-२४२॥

द्रव्य लिंग धर- अंध सम, अहंकार - मद - चूर।
मोक्ष प्राप्ति सो जीव को है अति दुर्लभ, दूर ॥

आवश्यक्त नहिं मोक्ष हित बाह्य क्रिया व्यवहार।
स्वानुभूति, अनुभव सहज जीव मुक्ति आधार ॥५१-२४३॥

जिनवाणी की अगमता तथा समयसार का सार :—

कहें कहाँ तक अगम हैं जिनवाणी विस्तार।
नित्य आत्म अनुभूति ही एक वस्तु है सार॥

बहु विकल्प सब झूठ हैं, बहुत बोलना व्यर्थ।
वाणी उतनी बोलिए जितनी का कुछ अर्थ॥

शुद्ध जीव के अनुभवन के सम वस्तु न कोए।
द्रव्य क्रिया, पाठन - पठन, बिन सो व्यर्थहिं होए॥

चेतन - स्व - रस - प्रवाह से प्रगटे केवल ज्ञान।
मोक्ष - मार्ग भव्यों यही और सभी अज्ञान॥५२-२४४॥

शुद्धात्मा के प्रगटीकरण का निम्न २ काव्यों में कथन :—

दर्श—ज्ञान—चारित्र मय, ज्ञाता—सकल, अनूप।
ज्ञान—पुंज, अक्षय, अमल, अनुभव हुआ स्वरूप॥५३-२४५॥

'ज्ञान मात्र ही आत्मा' निकला सत - सिद्धांत।
अचल, अबाधित, एक, सो अनुभव गोचर शांत॥

शाश्वत आत्म - स्वरूप को समझा भली प्रकार।
सर्व विशुद्धहिं ज्ञान का पूर्ण हुआ अधिकार॥५४-२४६॥

सारांश :—यद्यपि शुद्धात्मा कर्मों का कर्ता-भोक्ता नहीं है फिर भी संसारी आत्मा विभाव परणति के कारण अपने कर्मों का कर्ता-भोक्ता है। २०४ वें काव्य तक यही कथन है। सांख्य, बौद्ध, मीमांसक, वैशेषिक आदि मतों के एकांत पक्षका निराकरण क्रमःश २०५ से २१५ तक काव्यों में किया गया है।

ज्ञान ज्ञेय को जानता है पर उस रूप नहीं होता इसका सुन्दर उदाहरण २१६ वें काव्य में है। 'राग-द्वेष का कारण अज्ञान है, बाह्य पदार्थ नहीं'—यह २१७ से २२२ तक काव्यों में बताया है। ज्ञायक होने पर भी जीव का अविकारी होना दीपक की उपमा द्वारा २२२ वें काव्य में दर्शाया है। ज्ञानी की चिंतन प्रक्रिया तथा स्वभाव का वर्णन २२३ से २३७ तक, तथा मोक्षार्थी को मोक्ष मार्ग का उपदेश २३८ से २४३ तक काव्यों में है। २४४ वां काव्य समयसार का सार रूप ही है।

दसवां सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार समाप्त

(११)
स्याद्वाद अधिकार

स्याद्वाद से जीव के स्वरूप की सिद्धि का प्रारम्भ :—

कुंद-कुंद का यहाँ तक समयसार मनुहार।
अमृत चन्द्र टीका करी जोड़े दो अधिकार॥
ज्ञान मात्र ही जीव का जैसे शुद्ध स्वरूप।
स्याद्वाद से घटित है भव्यों सुनो अनूप॥
मोक्ष - मार्ग अरु मोक्ष - पद पुनः कहा समझाए।
अस्ति-नास्ति, सद-असद सम सब विवाद सुलझाए॥१-२४७॥

ज्ञेय के अभाव में भी ज्ञान नष्ट नहीं होता :—

ज्ञेय सहारे ज्ञान है अथवा है स्वाधीन।
प्रथम प्रश्न यह उपजता अज्ञानी मतिहीन॥
ज्ञेय वस्तु के बिना भी ज्ञान नहीं विनसाए।
जीवहिं ज्ञान स्वभाव से ज्ञान ताहि हो पाए॥
पट को भी घट ज्ञान हो, जो घट कारण होए।
पट समीप घट होए से, पट घट ज्ञान न कोए॥
ज्ञेय सहारे ज्ञान है पर्यायहिं चितधार।
द्रव्य रूप स्वाधीन है, है अनादि अविकार॥२-२४८॥

नैयायिक मत—'ज्ञान और ज्ञेय की अभिन्नता' का निराकरण :—

"मैं व्यापी सर्वहिं जगत अन्य द्रव्य नहिं मान।"
षट् द्रव्यों की भिन्नता नहीं रहा पहिचान॥
द्रव्य एक बस ज्ञान है और नहीं कुछ ज्ञेय।
नैयायिक को भेद नहिं उपादेय अरु हेय॥
पशु समान स्वच्छन्द हो भ्रमित फिरे अंजान।
स्व - पर, द्रव्य - पर्याय अरु ज्ञायक - ज्ञेय न मान॥

जीव जगत से भिन्न है ज्ञानी करे विचार।
स्वाद्वाद से सिद्ध है स्व-पर भेद अविकार ॥३-२४९॥

एकांत विचार शुद्ध ज्ञान में बाधक है :—

ज्ञेय रूप परिणमन से ज्ञान धरे बहु रूप।
सो सब ही पर्याय हैं, ज्ञान स्वरूप अनूप ॥
शुद्ध वस्तु सधती नहीं है एकांत विचार।
द्रव्य रूप से ज्ञान इक, निराबाध चितधार ॥
ज्ञायक ताहि स्वभाव है, ज्ञेयहि रूप अनेक।
अनेकांत विद को सदा है स्पष्ट विवेक ॥४-२५०॥

ज्ञेय के ज्ञान से ज्ञान दर्पणवत ही विकारी नहीं होता :—

"ज्ञेय वस्तु के ज्ञान से ज्ञानहि होए विकार।"
सो चतुर्थ एकांती मन उपजे अविचार ॥
ध्यान रूप जल के बिना दोष दूर नहिं होय।
द्रव्य रूप यों समझता मिथ्यादृष्टी सोय ॥
पड़ने से प्रतिबिम्ब के दर्पण नहीं विकार।
ज्ञान ज्ञेय का हुए त्यों ज्ञान रहे अविकार ॥
ज्ञेय - ज्ञान से ज्ञान भी ज्ञेयाकार लखाए।
स्याद्वाद से भेद है द्रव्य और पर्याय ॥५-२५१॥

ज्ञेय के नाश से ज्ञान नष्ट नही होता (नट की उपमा) :—

अज्ञानी पंचम कहे जब तक ज्ञेयाकार।
ज्ञेय वस्तु अस्तित्व तक ज्ञान रहे साकार ॥
ज्ञेय वस्तु के साथ ही ज्ञान नष्ट हो जाए।
कहता सो जाने बिना भेद द्रव्य - पर्याय ॥
स्याद्वाद से सिद्ध है निर्मल ज्ञान स्वरूप।
केवल जाने ज्ञेय को कभी न हो तद्रूप ॥
धरता रूप अनेक है पर्यायहिं अनुसार।
दिखलाता कर्तव्य बहु ज्यों नट विविध प्रकार ॥६-२५२॥

"एक ब्रह्म" के विचार का निराकरण :—

अज्ञानी अद्वैत मत सप्तम करें विचार।
सर्व द्रव्य मय जीव ही एक ब्रह्म अविकार॥
निज स्वरूप जाने नहीं, नहिं जानें पर रूप।
छहों द्रव्य बिन भेद के उनको आत्म स्वरूप॥
"प्रतिबिम्बित हैं ज्ञान में ज्ञेय रूप, आकार।
ज्ञेय ज्ञान से पर कभी होए न एकाकार॥"
जानें ज्ञान स्वरूप सो स्याद्वादी मतिमाठा।
स्वानुभूति में मगन नित शाश्वत महिमावान॥७-२५३॥

ज्ञाता होने पर भी ज्ञान ज्ञेय नहीं हो जाता :—

'द्रव्य रूप नहीं ज्ञान है, माने ज्ञेयाकार।'
निश्चय मिथ्यादृष्टि का यह एकांत विचार॥
न्यूनाधिक, छोटा - बड़ा, ज्ञेय क्षेत्र सम ज्ञान।
अवगाही पर क्षेत्र सम समझ रहे अन्जान॥
ज्ञान - ज्ञेय सम्बन्ध पर, कभी न हो तद्रूप।
निज चैतन्य प्रदेश सम ज्ञानहि द्रव्य स्वरूप॥
घट - पटादि जाने तदपि कभी न तन्मय होए।
स्याद्वाद से जानता सम्यग्दृष्टी सोए॥८-२५४॥

ज्ञेय के नाश से ज्ञान नष्ट नहीं होता :—

द्रव्य रूप ही मानता नहिं माने पर्याय।
ज्ञेय वस्तु के ज्ञान से ज्ञान अशुद्ध बताय॥
ज्ञेय नाश से ज्ञान का नाश मानता कोय।
'ज्ञानहि जीव स्वरूप' सो नाश जीव का होय॥
पर यह मिथ्यादृष्टि है ज्ञानी करे विचार।
यद्यपि जाने ज्ञेय को पर नहिं सो आधार॥
ज्ञेय क्षेत्र के रूप भी परिणमता है ज्ञान।
यों रहता निज क्षेत्र में शाश्वत महिमावान॥९-२५५॥

'शरीर नाश से जीव नष्ट नहीं होता' सो कहते हैं :—

कोई अज्ञानी कहे जीव मात्र पर्याय।
इस शरीर के साथ ही जीव नष्ट हो जाए॥
'आलम्बन के साथ ही होवे जीव विनाश।
बुझते ही ज्यों दीप के मिटे तुरन्त प्रकाश'॥
चार्वाक एकांत से समझ रहे हैं सोय।
नाश शरीरहिं साथ तो पर्यायहिं ही होय॥
भेद द्रव्य-पर्याय का नहिं जानें अन्जान।
द्रव्य रूप से जीव है शाश्वत, अमिट, महान॥१०-२५६॥

क्रमशः दसवें पक्ष का स्पष्टीकरण और खंडन :—

'पंच तत्व के मेल से ज्ञान-शक्ति उपजाए।'
ज्ञेय साथ ही ज्ञान है अज्ञानी बतलाए॥
ज्ञेय वस्तु को जानते समय मात्र है ज्ञान।
बाहर के भ्रमवश रहा सो एकांती मान॥
द्रव्य और पर्याय का भव्यों भेद अनूप।
स्याद्वाद से सिद्ध है शाश्वत जीव स्वरूप॥११-२५७॥

'जीव चेतनाहीन है'—इस विचार का खंडन :—

निश्चेतन ही सर्वथा जीव मानते कोय।
ज्ञेय रूप ही परिणमन मात्र ज्ञान का होय॥
मिटते ज्ञेयाकार के चेतन होए अभाव।
भ्रम वश मानें जीव का चेतन-हीन स्वभाव॥
परिणमता है ज्ञान भी यद्यपि ज्ञेयाकार।
ज्ञेय भिन्न, चिद्रूप है, अविनाशी, अविकार॥१२-२५८॥

एक देह में अनन्त चेतन अंशों के विचार का खंडन :—

मिथ्यात्वी एकांती करता स्वेच्छाचार।
ज्ञेय क्रिया सम ज्ञान के भेद कहे अविचार॥
ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है नहीं मानता सोय।
भोग-योग परिणाम सम जीव रूप भी होय॥

एक देह में मानता चेतन अंश अनन्त।
एक शरीरहिं एक चित् निश्चय जाने संत॥
भाव रूप तो परिणमे चेतन विविध प्रकार।
यों शरीर से पृथक, इक, कर्म रहित, अविकार॥१३-२५९॥

वौद्धों के क्षणिकवाद का खंडन :—

बौद्ध क्षणिकवादी भ्रमित माने बस पर्याय।
क्षण - क्षण हो उत्पाद - व्यय चेतन का बतलाए॥
नया उपजता प्रति समय, मृत्य पूर्व की होय।
समझ रहा एकांत हठ जीव स्वरूपहिं सोय॥
वास्तव में जल–धार सम, जीव वस्तु है एक।
ताही में बन मिट रहीं, लहरें भाव अनेक॥
गुण–पर्यायहिं रूप बहु, द्रव्यहिं एक स्वरूप।
स्याद्वाद से जीव है, शाश्वत, अमिट, अनूप॥१४-२६०॥

'ज्ञायकपन का नाश ही मुक्ति'—इस विचार का खंडन :—

द्रव्य रूप ही मानते अन्य कई अन्जान।
'ज्ञेय रूप परिणमित जग', कहें अशुद्धहिं ज्ञान॥
ज्ञायकपन जब नाश कर आतम निर्मल होय।
सो एकांती भ्रमित मति मुक्ति मानते सोय॥
है अनित्य पर्याय से, द्रव्य नित्य है ज्ञान।
स्याद्वादी अनुभव करे सदा समुज्ज्वल ज्ञान॥
ज्ञान कभी रहता नहीं ज्ञायक गुण को खोय।
ज्यों प्रकाश गुण के बिना कभी न सूरज होय॥१५-२६१॥

स्याद्वाद की महिमा का २ काव्यों में वर्णन :—

थे विमूढ़ एकांत नय, मिथ्यात्वी अन्जान।
अनेकांत भासा उन्हें शुद्ध स्वरूपहिं ज्ञान॥
जीव द्रव्य प्रगटित हुआ, भव्यों ! उक्त प्रकार।
स्याद्वाद से सहज ही, हठ समस्त परिहार॥१६-२६२॥

अनेकांत नय से सहज, हुए सभी भ्रम चूर्ण।
स्याद्वाद का कथन अब भविजन होता पूर्ण ॥
जीव स्वरूपहि ज्ञान हित, स्वानुभूति रसखान।
अक्षय, थिर, बाधारहित, वीतराग–विज्ञान ॥१७-२६३॥

सारांश :–जैन धर्म के अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांतों में स्याद्वाद प्रधान है। वस्तु के किसी एक धर्म को एकांत से वस्तु का सम्पूर्ण स्वरूप समझने वाले अज्ञानी तथा एक-एक धर्म को नय विवक्षा से समझ कर उसके सम्पूर्ण स्वरूप का ग्रहण करने वाले स्याद्वादी ही ज्ञानी होते हैं। वास्तव में पदार्थ में अनेक धर्म होते हैं, वे सब एक साथ नहीं कहे जा सकते, क्योंकि शब्द की शक्ति सीमित है, अतः किसी एक धर्म को मुख्य और शेष को गौण करके ही वस्तु का कथन किया जाता है।

अन्य मतावलम्बी जीव के एक ही धर्म पर बल देते हुए उसी को जीव का सम्पूर्ण स्वरूप समझते हैं इसी कारण वे भ्रमित अज्ञानी कहे गए हैं। इस अधिकार के काव्यों में उनके द्वारा मान्य प्रत्येक धर्म का समर्थन करते हुए भी स्पष्ट किया गया है कि किसी दृष्टि मात्र से तो उनका कथन ठीक है परन्तु वही वस्तु का वास्तविक एवं सम्पूर्ण स्वरूप नहीं है।

नैयायिक मत ज्ञान और ज्ञेय को अभिन्न मानता है। इसका निराकरण २४९ वें काव्य में किया गया है। 'ज्ञेय के अभाव में ज्ञान नष्ट नहीं होता'—नट की उपमा द्वारा २५२ वें काव्य में इसका स्पष्टीकरण है। अद्वैत मत के 'एक ब्रह्म' के विचार का निराकरण २५३ वें काव्य में है। चार्वाक मत–'शरीर के साथ ही जीव नष्ट हो जाता है।'—का निराकरण २५६ वें काव्य में है। कोई अज्ञानी पंच तत्व के मेल से ही ज्ञान की उत्पत्ति मानते हैं उनका २५७ वें काव्य में खंडन है। जीव को चेतना हीन मानने के विचार का विरोध २५८ में काव्य में है। एक देह में अनेक चेतन अंशों के विचार का २५९ वें तथा बौद्धों के क्षणिकवाद का खंडन २६० वें काव्य में है। ज्ञायकपन का नाश ही मुक्ति मानने वालों के विचार का निराकरण २६१ वें काव्य में है।

एकादश स्याद्वाद अधिकार समाप्त

(१२)

साध्य साधक अधिकार

अनन्त शक्तियों से युक्त होते हुए भी जीव ज्ञान-गुण कभी नहीं त्यागता—

द्रव्य और पर्याय युत चेतन वस्तु अनूप।
क्रम-क्रम से पर्याय हैं, बिन क्रम द्रव्य स्वरूप॥
अस्तिहि, वस्तु, प्रमेययुत, अगुरु-लघुपना जान।
सूक्ष्म, कर्तृ अरु भोक्तृपन आदि जीव गुण मान॥
सो अमूर्त, सप्रदेश भी, हैं निज शक्ति अनेक।
पर नहिं त्यागे ज्ञान-गुण ताहि सर्वदा एक॥
साध्य जीव वर्णन किया स्याद्वाद अधिकार।
साधक-साधन अब करूँ वर्णन भली प्रकार॥१-२६४॥

स्याद्वाद से बुद्धि निर्मल होती है :—

विकसी निर्मल बुद्धि है स्याद्वाद आधार।
अनुभव करें स्वरूप को अनेकांत चितधार॥
वीतराग पथ पर सदा रहते हैं गतिमान।
सम्यग्दृष्टी जीव सो पाते केवल ज्ञान॥२-२६५॥

स्वरूपानुभव ही मोक्ष-मार्ग है :—

बिन स्वरूप अनुभव फिरें मूढ़ विकल संसार।
स्वानुभूति ही मोक्ष का एक मात्र आधार॥
शुद्ध करें मन-भूमि को हो एकाग्र स्वरूप।
भ्रमण अनादिहिं मेंट सो पावें मोक्ष अनूप॥३-२६६॥

ज्ञान-क्रिया-नय की एकता से शुद्धोपयोग की प्राप्ति :—

भव्यों ! ऐसा, यही है स्वानुभूति आधार।
निजानन्द रस लीन हो, भाव अन्य परिहार॥
राग-द्वेष तज, अचल हो, शुद्ध वस्तु चित लाए।
स्याद्वाद-कौशल-निपुण लखे द्रव्य-पर्याय॥
निज स्वरूप अनुभव बिना क्रिया सभी हैं व्यर्थ।
ज्ञान-क्रिया-नय मित्रता से भवि मोक्ष समर्थ॥४-२६७॥

सम्यग्दृष्टी ज्ञानी की आनन्दित अवस्था :—

प्रगट हुई शुद्धात्मा सहज चतुष्टय रूप ।
दर्श–ज्ञान–सुख–वीर्य युत, अचल प्रकाश स्वरूप ।।
राग–द्वेष–मोहादि की दूर हो गई रात ।
अनाकुलित आनन्द का प्रगटा स्वर्ण प्रभात ।।
निर्विकल्प, निर्मल, सहज करते निज–रस पान ।
रहें अतीन्द्रिय सुख मगन साधक मोक्ष महान ।।५-२६८।।

स्वभाव में मगन होने पर अन्य विकल्प मिट जाते हैं :—

अन्य भाव का काम क्या, विकसा जभी स्वभाव ।
बन्धन–मोक्ष विकल्प मिट रहा एक निज भाव ।।
स्याद्वाद से प्रगट ही भासा वस्तु स्वरूप ।
ज्ञान मात्र ही जीव है, अमिट, अनन्त, अनूप ।।
स्वानुभूति प्रत्यक्ष सम जिन अन्तर अविकार ।
सो साधक निज रस पगे होंएँ भवोदधि पार ।।६-२६९।।

आत्मा अखंड है :—

'मैं प्रकाश का पुंज हूं' सहज, अखंड, अनूप ।
शांत सर्वथा, एक हूं, अचल चेतना–रूप ।।
अस्ति-नास्ति, ध्रुव-अध्रुव पन, नय बहु एक-अनेक ।
ज्ञान हेतु सब भेद हैं, स्वानुभूति - रस एक ।।
प्रथमहि नय से जान कर शाश्वत वस्तु स्वरूप ।
उपादेय है मग्नता अनुभव - रसहिं अनूप ।।
द्रव्य - क्षेत्र अरु काल त्रय, भेद चतुर्थहिं भाव ।
अंश भेद नहिं आम्र सम, जीव अखंड स्वभाव ।।
रस, छिलका, गुठली तथा गूदा होंय विचार ।
अंश आम के जिस तरह, चेतन अंश न चार ।।
गंध, वर्ण, रस, परस ज्यों फल से भिन्न न कोय ।
त्यों द्रव्यदिक भेद पर, जीव अखंडित होय ।।७-२७०।।

आत्मा ज्ञान–ज्ञेय–ज्ञाता सभी कुछ है :—

"मैं ज्ञायक छह द्रव्य का, सब हैं मेरे ज्ञेय।"
कथन सोइ व्यवहार है, मैं ही ज्ञाता - ज्ञेय ॥
विद्या, अक्षर, अर्थ ज्यों होते एक स्थान।
त्यों निश्चय नय जानिए, ज्ञेयहि–ज्ञाता–ज्ञान ॥
ज्ञान शक्ति के रूप दो, हैं स्व - ज्ञेय पर - ज्ञेय।
पर - ज्ञानहि व्यवहार है, निश्चय ज्ञान स्व–ज्ञेय ॥८-२७१॥

स्याद्वादी ज्ञानी आत्मा की अनेक रूपता से भ्रमित नहीं होता :—

शुद्ध, अशुद्ध तथा वही, चेतन शुद्धाशुद्ध।
निश्चय अरु व्यवहार नय कथन सोइ अविरुद्ध ॥
भासे वस्तु स्वभाव पर, ज्ञानी भ्रम नहिं कोय।
शक्ति परस्पर सम्मिलित सहज प्रकाशित होय ॥९-२७२॥

अनेकांत एवं स्याद्वाद से आत्म स्वरूप की सिद्धि :—

वैभव आत्म स्वरूप का, अद्भुत, अगम, अनूप।
अनेकांत, स्याद्वाद से भासित हों सब रूप ॥
हों अनेक पर्याय पर, द्रव्य दृष्टि से एक।
क्षणभंगुर पर्याय हैं, विनसे जीव न नेक ॥
थिर, अस्तित्व विचार से निज प्रदेश में जान।
ज्ञान दृष्टि - चेतन वही लोकालोक प्रमान ॥१०-२७३॥

आत्मा की आश्चर्य जनक महिमा का वर्णन :—

महिमा जीव स्वभाव है विस्मय का आगार।
दृष्टि भेद से सर्वथा अद्भुत अपरम्पार ॥
है विभाव परिणमन वश राग - द्वेष युत जान।
शुद्ध रूप से जीव है, शांति, चेतना खान ॥
कर्म योग से भव - भ्रमण करता बारम्बार।
निश्चय मुक्त स्वरूप सो ज्ञानी करें विचार ॥
जगत - ज्ञेय त्रय काल की प्रतिबिंबित पर्याय।
स्व–पर–प्रकाशक दृष्टि से जीव स्वभाव लखाए ॥

ज्ञान मात्र चेतन सदा वस्तु स्वरूप विचार।
ज्ञान - ज्ञेय - ज्ञाता स्वयं निश्चय से चितधार ॥११-२७४॥

स्वानुभव से प्रत्यक्ष जीवात्मा का स्तवन :—

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि आत्म-लीन अविकार।
ज्ञानावरणी नाश से चमकी ज्योति अपार॥
शाश्वत ज्ञान स्वरूप ही निश्चय काल अनन्त।
अनुभव से प्रत्यक्ष सो जीव होय जयवंत॥१२-२७५॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य आत्मानुभवन की कामना करते हैं :—

अमृतचन्द्राचार्य की चन्द्रकला मनुहार।
अनुभव, टीका, काव्य में प्रगटी त्रिविध प्रकार॥
पूर्वापर बाधा रहित, शास्त्र हुआ सम्पूर्ण।
भासा जीव स्वरूप नित, स्वानुभूति रस पूर्ण॥
ज्ञान - ज्ञेय - ज्ञाता विलग, मिटी सर्वथा भ्रांति।
अविचल ज्ञान प्रकाश से मन में आयी शांति॥
निर्विकल्प, निर्मल, सहज, मोह - तिमिर कर दूर।
प्रगटा केवल ज्ञान - रवि, निजानंद भरपूर॥१३-२७६॥

अज्ञान के नाश से अंततः शुद्धात्मानुभूति-रस पान किया :—

पर पदार्थ निज मान कर भोगे भोग अनेक।
राग - द्वेष - मोहादि से कलुषित रहा विवेक॥
शतत - क्रिया का फल मिला—कर्म बंध अविराम।
अब सम्यक्त्व प्रकाश से हुई दृष्टि निष्काम॥
दुख पाया निज को सदा कर्ता—भोक्ता मान।
अष्ट - कर्म - फल क्रिया के भोगे कष्ट महान॥
विरत - क्रिया अब हो किया निजानंद रस पान।
स्वानुभूति रस में पगा प्रगटा सम्यग्ज्ञान॥
जो अशुद्ध था मिट रहा निरावरण निज रूप।
स्व—पर—भेद भासा, सहज, प्रगटा शुद्ध स्वरूप॥१४-२७७॥

अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रंथ का समापन :—

अर्थ सूचना शक्ति के शब्द होएँ भंडार।
प्रगट उन्हीं से हुए ये चेतन गुण अविकार॥
समयसार टीका करी अमृतचंद महान।
कर्तापन का है तदपि तनिक नही अभिमान॥
स्वानुभूति-रस से भरा, मोक्ष मार्ग का द्वार।
हे भव्यों निश्चय यही समयसार का सार॥
समयसार विज्ञान यह अतुल, अम्लान, अछोर।
दोहों में भाषा सरल द्वारा नन्द किशोर॥१५-२७८॥

सारांश :— जो साधना के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है वह साध्य तथा जो साधना करता है उसे साधक कहते हैं। केवल ज्ञानी अर्हंत सिद्ध पर्याय साध्य और सम्यग्दृष्टी श्रावक एवं साधक हैं।

स्याद्वाद से आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझकर साधक के समस्त भ्रम मिट जाते हैं और वह स्वानुभूति रस का पान करता है। ऐसा साधक आत्मा को निर्विकल्प, एक अखंड रूप देखता है तथा स्वयं को ही ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता रूप अनुभव करने लगता है इसका वर्णन २७० से २७४ तक काव्यों में है।

स्वानुभव से प्रत्यक्ष जीव का स्तवन २७५ वें काव्य में है। २७६ वें काव्य में श्री अमृत चन्द्राचार्य ने टीकाकार के रूप में अपना नाम प्रदर्शित करते हुए आत्मानुभव की महिमा का वर्णन किया हैं। २७७ वें काव्य में राग-द्वेष-मोहादि के विनाश से किस प्रकार ज्ञान-ज्योति तथा स्वानुभूति का प्रकाश फैला इसका वर्णन तथा अंतिम २७८ वें काव्य में अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रथ का समापन किया गया है।

वास्तव में, 'स्वानुभूति रस से भरा, मोक्ष मार्ग का द्वार' ही इस ग्रंथ रूपी गीत की टेक है तथा शेष सब कथन गीत के अतरे हैं। राग-द्वेष-मोहादि को दूर कर आत्मानुभव के रस में तल्लीन रहना ही समयसार का सार है। साधक अवस्था में भोग-रोग, सुख-दुख, इष्ट वियोग-अनिष्ट संयोग में सम दृष्टि रखते हुए आत्मानुभव रस में मग्न रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

द्वादश साध्य साधक अधिकार समाप्त

"ज्ञानकीर्ति" के सम्माननीय संरक्षक

१. श्री महावीर प्रसाद जैन, अग्रवाल मोटर्स लखनऊ फोन–४२८७२, ४५०८४
२. ,, नन्द किशोर जैन, संचालक ज्ञानकीर्ति लखनऊ फोन–८२४२०, ८२८६३
३. ,, सलेक चन्द्र जैन, बादशाहनगर, लखनऊ फोन–४७६१८
४. ,, सौभाग्यमल जैन (लखनऊ किराना कं०) फोन–८२८२३, ४५५७८
५. स्व० अजित प्रसाद जैन, फर्म निहाल चन्द जोती प्रसाद, देहली फोन–८७६२०

"ज्ञानकीर्ति" के आजीवन सदस्य

श्री अजित प्रसाद जी जैन चौक, लखनऊ
,, पदम चन्द जी गोटेवाले ,, ,,
,, आदित्य कुमार जी ,, ,,
,, रमेश चन्द ,, ,,
,, सुमेर चन्द वीर चन्द जी ,, ,,
,, कुन्दन लाल जी अमीनाबाद ,,
,, इन्दर चन्द जी वर्तन वाले ,, ,,
,, इन्दर चन्द जी, डालीगंज ,,
,, जयन्ती प्रसाद जी ,, ,,
,, भगत धनपालसिंह जी यहियागंज ,,
,, अजित प्रसाद अरविंदकुमार जी ,,
श्रीमती विद्या जैन जी ,,
श्री दयाचन्द राजेन्द्र कुमार जी जगराओं
,, धनेन्द्र कुमार जी कम्पिला जी
,, इन्द्रसेन जी कायमगंज
,, डा० एम० सी० जैन जी लश्कर
,, महावीर प्रसाद उग्रसेन जी अलीगंज
,, रसिक लाल जी कुरावली

श्री जम्बू प्रसाद जी जैन वजबज
,, जमादार चन्द्रसेन जी भिण्ड
,, प्रभु दयाल प्रकाश चन्द ,,
,, वंशी लाल जी गगवाल ,,
,, महेन्द्र प्रसाद वीरेन्द्र कुमार ,,
,, चुन्नी लाल रमेश चन्द्र ,,
,, भाग चन्द फूल चन्द जी ,,
,, महावीर रोलिंग शटर ,,
,, पदम चन्द जैन ,,
,, आदिनाथ दि० जैन चैत्यालय ,,
,, जमादार उग्रसेन जी ,,
,, त्रिलोकचन्द जैन एण्ड संस सहारनपुर
,, राजेन्द्र विजय की मातेश्वरी मैनपुरी
,, रतनलाल मानिक चन्द जी मुरार
,, सुमेर चन्द धर्मेन्द्र कुमार इटावा
,, जैन दूध भण्डार, देहली
,, पूरन चन्द लक्ष्मी चन्द एवल
,, किशोरी लाल महावीर प्रसाद गोहद

"ज्ञानकीर्ति प्रकाशन" के सदस्य बनिए

यों तो चारो दान ही मुक्ति हेतु सोपान।
पर इन सब में मित्रवर सर्वश्रेष्ठ श्रुतदान॥

ज्ञानकीर्ति प्रकाशन द्वारा प्रकाशित समस्त पुस्तकें निम्न भांति प्रचारार्थ दी जाएंगी।

(१)	आजीवन	रु० १०१)	१ प्रति	सदैव नाम प्रकाशित होगा।
(१)	संरक्षक	रु० २५१)	४ प्रतियां	एक बार फोटो का भी प्रकाशन
(३)	वरिष्ठ संरक्षक	रु० ५०१)	१० ,,	पूरे परिचय सहित फोटो प्रकाशन
(४)	वरिष्ठ मान्य संरक्षक	रु० १००१)	२५ ,,	एकाधिक बार ,, ,, ,,
(५)	अधिकारी संरक्षक	रु० २००१)	६० ,,	,, ,, ,, ,,
(६)	वरिष्ठ अधि० संरक्षक	रु० ३००१)	१०० ,,	,, ,, ,, ,,
(७)	वरिष्ठ अधि० संरक्षक	रु० ५००१) से ऊपर	२०० प्रतियां प्रति ५००१)	,,

---

मुद्रक—जैन प्रिन्टर्स १२६, न्यू मार्केट नखास, लखनऊ